VYAS PANCHANG

ज्योतिष-पंचांग-पूजा पाठ एवं ज्योतिष परामर्श

बालागाम,ता.केशोद,जिला.जूनागढ़,गुजरात,भारत(इन्डिया) पिन:362220

www.vyaspanchang.com, help@vyaspanchang.com, MO.NO.94087 28736 (11 AM TO 06 PM)

ॐ

ज्योतिषचन्द्रिका

संस्कृत-हिन्दी

VYAS PANCHANG

ॐ

ज्योतिश्चन्द्रिका

जिसको

गङ्गाप्रसाद ने ज्योतिः सत् सिद्धान्त

प्रकाशनार्थ

रचा

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च। सभा नभातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र ॥२॥ सिद्धान्तशिरोमणौ।

और जिसको

ग्रन्थकर्ता की आज्ञानुसार लाला रामचन्द्र

वैश्य ने देशोपकारी समझकर

प्रकाशित की

वैदिक यन्त्रालय अजमेर में

मुद्रित हुई

All rights reserved

सन् १८९३ ई०

द्वितीय बार १०००] [मूल्य ⅃)

Copy right Registered under Sections 18 and 19 Act XXV of 1867.

श्री
ओ३म्

भूमिका

इस पुस्तक के बनाने का मुख्य प्रयोजन (जो "उपक्रम" से ज्ञात होगा) एतद्देशवासियों को यह जतलाना है कि 'भूमि का गोल होना' 'सूर्य्य की परिक्रमा करना' इत्यादि जिन ज्योतिष् की मोटी २ बातों को इस देश के विद्यार्थी अङ्गरेज़ी स्कूलों और कालिजोंमें पढ़कर यह मान लेते हैं कि ये बातें यौरपवालों ही ने निश्चित की हैं—वे हमारे देश में सहस्रों और लक्षों वर्ष से प्रचरित थीं। इस का द्वितीय अभिप्राय यह सिद्ध करना है कि फलित के ग्रन्थ जिन के आश्रय आधुनिक 'नाम के ज्योतिषी' राहु केतु की दशा बताकर अनेक लोगों को ठगते फिरते हैं, नवीन और कपोलकल्पित हैं, और वस्तुतः ज्योतिःशास्त्र (अर्थात् गणित) से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते।

मैं श्रीमान् पण्डित गौरीदत्तशर्मा तथा पं० मोहनलाल शाण्डिल जी बी० ए० को सविनय धन्यवाद देताहूं जिन्हों ने इस पुस्तक के रचने में मुझे बड़ी सहायता दी।

यदि इस पुस्तक में कहीं भूल चूक रहजाय तो आशा है कि पाठकगण सुधारलेंगे और मुझ को क्षमा करेंगे।

मेरठ
१४-७-८९

ह० गङ्गाप्रसाद

द्वितीय संस्करण की भूमिका

सर्वसाधारण ने इस तुच्छ पुस्तक का जैसा मान किया उस से मैं नितान्त कृतकृत्य हूं। आर्य्यसमाज अमरावती के एक योग्य और उत्साही सभासद् श्रीमान् कुंवर महादेवसिंह जी (धाराशिवनिवासी) ने इस का महाराष्ट्र भाषा (मरहटी) में भी अनुवाद कर लिया है, जो शीघ्र छपनेवाला है। उर्दू अनुवाद की भी बहुत मांग आई परन्तु कई कारणों से अब तक न हो सका॥

अब की बार इस का गणितभाग शोध कर बढ़ा दिया गया है। प्रत्येक विषय में कुछ नये प्रमाण डाले गये हैं। "ग्रहण" विषय जो पहले "पृथिवी की गोलाई" के अन्तर्गत था बहुत कुछ बढ़ा कर पृथक् रख दिया गया है॥

आगरा
१-३-९२ } गङ्गाप्रसाद

ओ३म्

ज्योतिश्चन्द्रिका

अथोपक्रमः

ओ३म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ तैत्ति० ९।१०॥

अर्थ—हे सर्वशक्तिमन्! हे अद्वितीयानुपम जगदाधार! हे सर्वजगदुत्पादक अस्मत्पितः! हम पर ऐसी कृपा करो, कि हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें, और परम प्रीति से सब मिलकर ऐश्वर्य भोगें, हे परमेश्वर! आप की सहायता से हम सब एक दूसरे की सामर्थ्य को बढ़ावें। हे परमात्मन्! आप की करुणा से हमारा पढ़ा पढ़ाया सुफल हो, और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे। हे जगदीश्वर! आप की शिक्षा से हम द्वेषभाव को छोड़ सब से मित्रतापूर्वक वर्तें। हे सर्वशक्तिमान्! आप की कृपा से (आध्यात्मिक) ज्वर पीड़ा आदि, (आधिदैविक) अति शीतोष्ण, अति वर्षा वा वर्षा का न होना आदि, और

(आधिभौतिक) सिंह सर्प चौरादि से भय, जो ये तीन प्रकार के ताप हैं, उन से हम सदा बचें, और पूर्णसुख को प्राप्त होकर सदा ऐसे कर्म करें कि जिन से संसार भर को सुख और हमारे देश का कल्याण हो। हे सर्वान्तर्यामिन्! एतद्देशवासियों के हृदय में ऐसा प्रकाश करो कि जिस से वे पक्षपात को छोड़ एकमत होकर एकता का बीज बोवें। हे प्रकाशस्वरूप! इस अविद्यान्धकार को जो चिरकाल से इस देश में छा रहा है शीघ्र दूर करके विद्या का प्रकाश कीजिये, जिस से इस देश का शीघ्रही उद्धार हो।

जबहम आर्ष ग्रन्थों और प्राचीन इतिहासेंको देखतेहैं, और अपने देश की वर्त्तमान और व्यतीत दशाका मिलान करते हैं, तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर पाते हैं। वही देश जो एक समय में ऋषि मुनियों से अलंकृत, वेदादि सच्छास्त्रों से जटित, विद्या बल धन पौरुषादि से भूषित, सत्यता धार्मिकता आदि श्रेष्ठ गुणोंसे शोभायमान, और सभ्यता की खानिथा, इस समय वही देश दिन प्रतिदिन अवनति को प्राप्तहोता चला जाता है। वही देश कि जहां से अनेकानेक वस्तु बनकर जातीथीं, तब अन्य देशवाले अपना निर्वाह कर सकतेथे, आज इस अधोगति को प्राप्त हो गया, कि यदि वलायत से दीयेसलाई बनकर न आयें तो कदाचित् हम अंधेरे ही में बैठे रहें! जिस देश में एक सनातन वेदमत चला आता था, वहां आज इतने मत प्रचलित हैं कि जिनका गिनना भी कठिन है! जिस देश के रहनेवाले इस असार संसार को तुच्छ जानते थे और धर्म ही को सर्वोपरि मानते थे, उसी देश के निवासियों में से अब बहुत से यह भी नहीं जानते, कि 'धर्म'

क्या वस्तु है! जिस देश के रहने वाले विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों के कारण "आर्य्य" कहलाते थे अब उसी देश के रहने वाले "काला, कुत्सित, चोर, डाकू, हिंदू, नीम वहशी" इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं! 'विद्या' जिसके कारण यह देश सब देशों का मुकुटमणि गिना जाता था बिलकुल लुप्त होगई है! पूर्वकाल में इसी देश से सब देशों में विद्या फैली। जैसा मनु जी ने कहा है:-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

(अर्थात्) इसी देश के ब्राह्मणों से सब देश वालों ने अपनी अपनी विद्या सीखी। परन्तु हाय! अब उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान में लाखों ऐसे हैं, जो विद्या तो क्या नाम को एक काला अक्षर भी नहीं जानते! हाय! वह ब्राह्मण जो वेदों को पढ़कर उत्तम शिक्षा देते थे, वह ऋषि मुनि जो सत्योपदेश करके हमको धर्म पर आरूढ़ करते थे, वह शूरवीर सुभट जो तन मन धन से स्वदेश रक्षा में तत्पर रहते थे, वह तत्त्व ज्ञानी ऋषि, वह विद्या और बुद्धि के अवतार, जिन्होंने इस देश को सब देशों का शिरोमणि बना रक्खा था, कहां गये!! हा शोक! कहां वह उन्नति और कहां यह दुर्दशा! परन्तु क्या किया जाय किसी कवि ने सत्य कहा है:-

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥

(अर्थ)–संचय समस्त चयपर्य्यन्त है, ऊंचाई गिरने पर्य्यन्त है, समस्त संयोग वियोग पर्य्यन्त हैं, और जीवन मरण पर्य्यन्त है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु का संचय है उसका चय अवश्य है, जो वस्तु अत्यन्त ऊंचाई को पहुंचेगी वह अवश्य गिरेगी, जिसका संयोग है उसका वियोग है, जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा। इसी तरह से हमारा देश जो अत्युच्च पदवी को प्राप्त था, सब देशों का शिरोमणि गिना जाता था, जिसको आन सब संसार मानता था, यदि अब इस हीन दशा को प्राप्त होगया है, तो क्या इसके भले दिन न आयेंगे ? क्या फिर हमारे देश में विद्या का प्रचार न होगा ? अथवा पूर्व कालवत् ऋषि मुनि और सत्योपदेष्टा न होंगे ? क्यों नहीं ! अवश्य होंगे। यह भारतभूमि बांझ नहीं हुई है, जिस की कोख में अब भी **स्वामी दयानन्द सरस्वती** सरीखे सुपुत्र जन्मते हैं ! अब भी परमेश्वर को कोटानुकोट धन्यवाद देने चाहियें, कि जिसकी कृपासे परमपद प्राप्त श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य भारतोद्धारक सनातन वेद मत प्रचारक महर्षि श्री उक्त स्वामी जी ने जन्म लेकर वेदों का भाष्य और पुनः सत्य का प्रकाश कर दिया, नगर नगर और ग्राम ग्राम भ्रमण करके जहां तहां आर्य्य समाजें स्थापित करदीं, जिनसे अब हर ओर वेदध्वनि और धर्मचर्चा सुनाई देती है। फिर लाखों मनुष्य सहस्रों वर्षों से भूले हुए सद्धर्म पर आरूढ़ होगये, और अपने अधोगतदेश के उद्धारार्थ अनेक उपाय सोचने लगे॥

परन्तु शोक तो यह है कि अब भी हमारे बहुत से स्वदेशीय भाई ऐसी घोर निद्रा में सोये पड़े हैं, कि यह भी

नहीं जानते कि हमारा देश क्याथा और क्या होगया। जो सुशिक्षित नहीं और विद्याहीनहैं, वे तो अलग रहे, प्रायः विद्वान् और सुशिक्षित भी देशोन्नति में ऐसे कटिबद्ध नहीं दीखते जैसी देश को आवश्यकताहै। संस्कृत का तो कुछ प्रचारही नहीं, और अङ्गरेजी के विद्वान् जिन पर हमारे देशनिवासी अपने सुधार का भरोसा रखते हैं, संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण अपने पूर्वजों को मूर्ख जान और स्वदेश विद्या और धर्म को असत्य समझ, बहुधा धर्म-हीन होजातेहैं। भला फिर ऐसोंसे सुधार की क्या आशा हो सकती है? मैंने स्वयं देखाहै कि बहुत से नवशिक्षित विद्यार्थी 'पृथिवी का गोल होना' 'सूर्य के चारो ओर घूमना' 'अक्षांश देशांतर' 'सूर्य चन्द्रग्रहण' इत्यादि ज्योतिष् की मोटी २ बातों को स्कूलों और कालिजों में पढ़ कर यही समझलेते हैं, कि "ये बातें अङ्गरेजों ही ने निश्चित की हैं, हमारे पूर्वज कुछ नहीं जानते थे, हमको अङ्गरेज़ों ही ने सभ्यता सिखलाई है" इत्यादि स्वदेश विद्या और धर्म से विमुख होजाते हैं। परन्तु यह नहीं समझते कि प्राचीन समय में इसी देशसे सब संसारमें विद्या फैली। यहींके विद्वान् और उपदेष्टा देशांतरोंमें जाकर वहांके रहने वालोंको शिक्षा देते और सत्योपदेश करतेथे। प्राचीन इतिहासोंसे सिद्धहै कि यहांसे मिस्र, मिस्रसे अरब और यूनान, और यूनान से यौरप भरके सब देशों में यहां की विद्या और सभ्यताका प्रचार हुआ। "यदि पैथ-गोरस (Pythagoras) सोक्रटीज़ (Socrates) एरिस्-टोटल (Aristotle) प्लैटो (Plato) आदि यूनान देशके त-त्त्वज्ञों के मत और विचार को कपिल, गौतम, पतञ्जलि, जैमिनि, कणाद, वेदव्यास आदि शास्त्रकारों के मत और

सिद्धान्तों से मिलाइये, तो उन में गूढ़ समता पानेसे यह स्पष्ट विदित होजाता है कि यहां की विद्या धीरे धीरे पश्चिम में फैली।" † जिन यौरप निवासियों को हमारे देश के नवशिक्षित विद्यार्थी बुद्धि के भण्डार और पदार्थ-विज्ञान (Science) शिल्प कलादि विद्याके अगाध समुद्र समझे हुये हैं, उन्हों ने भी बीस २ लाख रुपयेकी दूरबीनों से जिन ग्रहों की गति निश्चय की है, उन्हीं ग्रहों की गति हमारे पूर्वज एक बांस की नलिका द्वारा यथार्थ निश्चित कर गये हैं। ††

यहां पर उदाहरण के लिये **ज्योतिष्** के कुछ सिद्धांतों के विषय में कुछ वेदमन्त्र, सिद्धांतशिरोमणि आदि ग्रन्थ, और आर्यभट्ट आदि आचार्यों के प्रमाण ❊ दिये जाते हैं जिन से स्पष्ट विदित हो जायगा कि प्राचीन आर्य ज्योतिष् और खगोल विद्या को किस पूर्ण रीति से जानतेथे, और बहुत से सिद्धांत जिन को यौरप निवासी २०० वा ४०० वर्ष से पूर्व जानते भी न थे, आर्यों में सहस्रों क्या लक्षों वर्ष से प्रचरित थे कि जब और देश वालोंमें सभ्यता का लेश मात्र भी न था।

इत्युपक्रमः॥

† कर्नल आलकट कृत "भारत त्रिकाल दशा,,

†† उदाहरण के लिये देखो "यन्त्राध्याय,, (सिद्धान्त-शिरोमणि)

❊ आजकल संस्कृत का प्रचार न रहने से हमारे देशवासी इन विषयों को बहुधा कम जानते हैं इसलिये प्रमाणों के सिवाय जहां तहां युक्तियें भी दी गई हैं।

पृथिवी का गोल होना।

यद्यपि आजकल 'पृथिवी का गोल होना' अङ्गरेजी स्कूलों के सब विद्यार्थी जानते हैं, परन्तु ४५० वर्ष से पूर्व अङ्गरेज क्या यौरपभर में कोई इस विषय को नहीं जानता था। जब सन् १४९२ ई० में (Colombus) कोलम्बस भूमि का गोल होना निश्चय करके इस आर्यावर्तदेश के खोज करने को चला, उस समय की पुस्तकों से, (जिनमें उस के भारत भूमि की खोज में निकलने और अमरीका ज्ञात करने का वृत्तांत लिखा है), विदित होता है कि तब साधारण मनुष्य तो क्या, यौरप के तत्त्वज्ञों और ज्योतिर्विद्या के आचार्यों (Astronomers) में से भी बहुत कम इस बात को मानते थे। परन्तु प्राचीन आर्य इसबातको भलीभांतिसे जानतेथे। संस्कृतमें 'भूगोल,' * शब्दही सिद्ध करता है कि एतद्देशवासियों को 'पृथिवी का गोल होना' लाखों वर्ष से मालूम था। 'ब्रह्मसिद्धांत'

---

* यहां उदाहरण मात्र के लिये 'सूर्य सिद्धांत,' का एक श्लोक दिया जाता है जिस में 'भूगोल,' शब्द आया है—

मध्ये समन्ताद्‌ण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥

यह सूर्य सिद्धांत ग्रंथ इसी चतुर्युगी के त्रेता युग में बना है, जैसा ग्रंथकर्त्ता जगदुत्पत्ति काल के विषय में कहते हैं—

अष्टाविंशाद् युगादस्माद्यातमेतत् कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसङ्ख्याय सङ्ख्यामेकत्र पिण्डयेत्॥

अर्थ—अब इस २८ वीं चतुर्युगी में से यह सतयुग व्यतीत

में पृथवी को 'कपित्थाकारा' अर्थात् कैत ❀ के सदृश आकारवाली कहा है ॥ यहाँ यह शंका होती है कि यदि पृथिवी गोल है तो चपटी क्यों दीखती है ? इसका कारण "सूर्यसिद्धांत" में यह लिखा है कि—

अल्पकायतया स्वस्थानात्सर्वतो मुखम् ।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥
(सूर्यसिद्धान्ते, भूगोलाध्याये ।)

(अर्थ) मनुष्य (पृथिवी की अपेक्षा) बहुत छोटे शरीर वाले होने के कारण अपने स्थान से चारों ओर मुख करते हुए (गेंद के समान) वृत्ताकार पृथिवी को भी चक्र के सदृश चपटी देखते हैं ॥ ऐसा ही "सिद्धान्तशिरोमणि" में कहा है:-

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः ।
पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान् ॥
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना ।
समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

हुआ अर्थात् अब त्रेता युग वर्तमान है, इसलिये पूर्वोक्त प्रकार से जगदुत्पत्ति काल की संख्या करे ।

इससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ त्रेता में बना है । यदि त्रेता के अन्त में भी मानाजाय तो भी द्वापर युग के ८६४००० वर्ष होते हैं, अर्थात् इतने वर्ष पूर्व भी भारतनिवासी पृथिवी को गोल जानते थे ॥

❀ 'कैत, एक गोलाकार फल का नाम है ।

अर्थ—मनुष्य जो पृथिवीतल पर रहता है, भूमि की अपेक्षा बहुत छोटा होने के कारण, पृथिवी की परिधि के बहुत ही छोटे भाग को देख सकता है, इसलिये उस को भूमि चपटी दिखलाई देती है, वास्तव में वह गोलही है। जैसे एक बड़े माट के छोटे से टुकड़े को देखकर कोई नहीं कहसकता कि यह किसी गोलवस्तु का टुकड़ा है, और जैसे पांच या छै मील लम्बी घुड़दौड़ की सड़क के छोटे से भाग को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि यह सड़क गोल है, वरन वह सीधी ही दिखलाई देती है। ऐसे ही भूमि के ३ वा ४ मील के टुकड़े को देख कर पृथिवी की गोलाई नहीं दीख सकती ॥ पुराणों में पृथिवी को चपटी कहा है, परन्तु भास्कराचार्य जो सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में इसका निराकरण यों करते हैं—

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा ।
भगवती धरणी तरणिः क्षितेः ॥
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् ।
किम् नरैरमरैरिव नेक्ष्यते ॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः ।
किमु तदन्तरगः स न दृश्यते ॥
उदगयन्ननु मेरुरथांशुमान् ।
कथमुदेति च दक्षिणभागके ॥

अर्थ—यदि पृथिवी दर्पणोदर धरातल के समान चपटी है तो मनुष्यों को ऊपर को भ्रमण करता हुआ सूर्य (साय-

काल के पश्चात्) क्यों नहीं दीखता ? यदि सूर्य मेरु की ओट में आजाता है तो मेरु क्यों नहीं दिखलाई देता ? और यदि मेरु की आड़ से निकलकर सूर्य उदय होता है तो पूर्वोत्तर दिशा ही से सूर्य का उदय होना चाहिये, क्योंकि मेरु उत्तर की ओर है। फिर (शीत काल में) दक्षिण भाग से सूर्य का उदय क्यों होता है ?

इसलिये यही मानना पड़ेगा कि पृथिवी ही की आड़ में सूर्य आजाता है अर्थात् भूमि का जितनाभाग सूर्यके सामने होता है उतने में दिन और जो ओट में आजाता है उतने में रात्रि होती है। इसलिये पृथिवी गोलाकार ही है। ऐसाही निम्न लिखित युक्तियों से भी सिद्ध होता है-

१- जब जहाज़ किनारे के समीप आता है तो पहिले उस का ऊर्ध्व भाग दिखलाई देता है, क्योंकि उसका अधोभाग पृथिवी की गोलाई की ओट में रहता है, पश्चात् अधोभाग दीखता है।

२- बन्दरगाह से चलते समय सब से पहिले जहाज़ का अधोभाग दृष्टि से बाहर होजाता है।

३-जहाज़ जब किनारे के समीप आताहै तो पहिले (ऊंचे) पहाड़, और पीछे (नीचे के) मैदान दिखलाई देते हैं। कारण यही है कि नीचे की वस्तुएं गोलाई की ओट में आजाती हैं। क्योंकि-

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः ।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नु रहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः ॥
(लल्ल सिद्धान्ते)

(अर्थ) यदि पृथिवी चपटीहै, तो बहुत दूर स्थित, ताड़

के समान ऊंचे २ वृक्ष पूरे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते। अर्थात् दूर स्थित वृक्षों के समान केवल ऊर्द्ध भाग दृष्टि पड़ने का कारण यही है कि उन का नीचे का भाग पृथिवी की गोलाई की ओट में आजाता है॥

५–पृथिवी के भिन्न भिन्न स्थलों से तारागण की स्थिति भिन्न भिन्न प्रकार की दिखलाई देती है।

धूर्ध्वोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते॥

सूर्य्यसिद्धान्ते भूगो०

(अर्थ) उत्तरीय मेरु (North pole) की ओर जाने वाले को ध्रुव तारा ऊंचा उठता हुआ दिखलाई देता है, और आकाश के दक्षिण भाग के तारे नीचे को जाते दिखलाई देते हैं। दक्षिण की ओर जाने वाले को इस के विपरीत दिखलाई देता है॥ तथाच–

उदग्ध्रुवं याति यथा यथा नर-
स्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम्॥
उदग् ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेः।

सि० शि० गोलाध्याये।

(अर्थ) जैसे जैसे मनुष्य उत्तर दिशा को जाता है तैसे तैसे वह दक्षिण भाग के तारे आकाश के नीचे को और उत्तर ध्रुव ऊपर को जाते देखता है।

इसका यही कारण है कि भूमि गोल होने के कारण बहुत से तारे गोलाई की ओट में होते हैं। जब हम उत्तर की ओर जाते हैं तो बहुत से तारे जो क्षितिज मण्डल

(Horizon) के नीचे होने के कारण दृष्टिगोचर न थे दिखलाई देने लगते हैं, जो क्षितिज के ऊपर दीखते थे वे अधिक ऊंचे दिखलाई देते हैं, और दक्षिण के तारे नीचे को डूबते हुए दीखते हैं। इस प्रकार विषुवद् वृत्त रेखा (Equator) पर रहने वालों को उत्तरध्रुव पृथिवी से लगाहुआ दिखलाई देता है, ज्यों २ उत्तर को जाते हैं त्यों २ यह ऊपर को उठता है, और उत्तर मेरु पर तो यह ठीक सिर के ऊपर दीखता है॥

६--नहर खोदते समय पनसाल करने के कारण प्रतिमील ८ इञ्च गहराई कम खोदी जाती है॥

७--बहुधा जहाज़ बिना मुड़े सीधे एक ही ओर (पूर्व वा पश्चिम) चले तो वहीं आगये कि जहां से चले थे॥

८--चन्द्रग्रहण में पृथिवी की छाया सदा गोल ही पड़ती है। (देखो "ग्रहण" विषय)॥

९--एक ही समय में पृथिवी के एक भाग में रात्रि होती है और दूसरे भाग में दिन।

उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।
मध्याह्नो यमकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रिः स्यात्॥
आर्यभट्टीये गोलपादे।

(अर्थ) जिस समय लङ्का में सूर्य का उदय होता है, उस समय सिद्धपुर (अमरीका के किसी नगर विशेष का नाम है) में सूर्यास्त, यमकोटि में मध्याह्न, और रोम में आधी रात होती है॥ यही तात्पर्य सि० शि० के गोलाध्याय में कहा गया है-

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्
तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्य्याम् ।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद् रोमके रात्रिदलं तदैव ॥

इस का कारण पृथिवी का गोल होना ही है, क्योंकि–

भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि ।
अर्धानि यथासारं सूर्य्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥
(आर्य्य भट्टीये)

(अर्थ) गोल होने के कारण भूमि आदि ग्रह उपग्रहों के आधे भाग अपनी छाया से अन्धकार में रहते हैं और सूर्य्य के सामने के आधे भाग प्रकाशित होते हैं,

घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः ।
(सि० शि० गो०)

(अर्थ) जैसे धूप में रक्खा हुआ घड़ा आधा प्रकाशित और आधा अपनी ही मूर्त्ति की छाया में रहता है ॥

१०–दिन रात के घटने बढ़ने से भी पृथिवी का गोल होना सिद्ध होता है । ज्योतिष में लिखा है–

घर्मवृद्धिरपाम् प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ ।
दक्षिणे तौ विपर्यस्तौ षण्मुहूर्त्त्ययनेन तु ॥

अभिप्राय यह है कि जब सूर्य्य विषुवद्वृत्तरेखा के उत्तर को चलता है तब उत्तरीय भाग में दिन बढ़ने लगता है और रात्रि घटने लगती है, और जब सूर्य्य दक्षिण को जाता

है तब उसके विपरीत, अर्थात् दक्षिण में दिन बढ़ता है, और उत्तर में दिन घटता और रात्रि बढ़ती है।

विषुवद् वृत्तरेखा (Equator) * पर, जहां सूर्य्य की किरणें सदा सीधी पड़ती हैं, दिन रात सदा बराबर होते हैं, परन्तु इस रेखा के उत्तर और दक्षिण में ये सदैव घटते बढ़ते रहते हैं। ज्यों २ विषुवद्वृत्त से अन्तर बढ़ता है, त्यों २ दिन रात में भी अन्तर बढ़ता है। यहां गरमी में १४ घण्टे तक का दिन और १० घण्टे तक की रात्रि होती है, और शीतकाल में इसके विपरीत अर्थात् १० घण्टे तक का दिन और १४ घण्टे तक की रात्रि; इङ्गलिस्तान में (जो यहां से उत्तर की ओर है) १६ घण्टे और कहीं कहीं १७ घण्टे तक के दिन रात्रि, और बर्फ़िस्तान (आइस लैण्ड Iceland) में २२ घण्टे तक के दिन रात्रि, और इसी भांति बढ़ते २ ध्रुवों पर ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात्रि होती है। यथाहः-

लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्
तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र।

---

* इस रेखा को सिद्धान्त शिरोमणि आदि ज्योतिष के ग्रन्थों में 'विषुवद् वृत्त' नाम से कहा है, परन्तु भाषा के (भूगोल आदि) पुस्तकों में भूल से इस को 'भूमध्य रेखा' नाम से पुकारा है। संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण भाषा के ग्रन्थ कर्ताओं ने अंगरेजी पुस्तकों से उलथा करते समय ऐसे अनेक शब्द घड़ लिये हैं, जैसे 'मध्यरेखा, (Meridian) के लिये 'मध्याह्न रेखा' और 'मेरु' (Poles of the Earth) के लिये 'ध्रुव' हम इस पुस्तक में "भूमध्य रेखा" के स्थान में ठीक शब्द "विषुवद् वृत्तरेखा" को ही काम में लावेंगे॥

यावच्च याम्या सततं तमिस्रा
ततश्च मेरौ सततं समार्धम् ॥
सि. शिरोमणि

(अर्थात्) जबतक उत्तर में सूर्य्य की क्रान्ति (Declination) लम्ब (Colatitude) से अधिक रहती है तबतक उत्तर में दिन और दक्षिण में रात्रि बढ़ती है, और उत्तरीय ध्रुव पर ६ महीने का दिन होता है और दक्षिण ध्रुव पर ६ महीने की रात्रि।

यदि पृथिवी गोल न होती तो यह सर्वथा असम्भव होता इस लिये पृथिवी गोल ही है ॥

पृथिवी का आधार

सत्येनोत्तभिता भूमिः। अथर्व. कां. १४ अनु. १ मं. १॥

(अर्थ) परमेश्वर ने भूमि को धारण किया है।

स दाधार पृथिवीम्। यजु०

(अर्थ) उसी ने पृथिवी को धारण किया है। तथा

शेषाधारा पृथिवी।

(अर्थ) जो प्रलयकाल में भी 'शेष' रहे—अर्थात् जिसका प्रलय में भी नाश न हो उस अविनाशी परमात्मा ने पृथिवी धारण कर रक्खी है।

इस ही का सत्यार्थ न समझकर पुराण कर्त्ताओं ने यह मान लिया है कि 'शेष नाम सर्प के आधार भूमी है'। ऐसे ही—

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्। ऋग्वेदे ॥

(अर्थ) 'उक्षा, अर्थात् सूर्य्य की आकर्षण के आधार

पृथिवी है- अर्थात् भूमि किसी (विशेष पदार्थ) के आधार नहीं, केवल सूर्य की आकर्षण शक्ति से अपनी कक्षा में स्थित है।

इस वेद मन्त्र का भी ठीक अर्थ न जानकर पौराणिकों ने यह अर्थ किया है कि 'बैल (वा गाय) ने पृथिवी का धारण किया है'। इसमें कुछ संदेह नहीं कि 'उक्षा' शब्द का अर्थ 'बैल' भी है, परन्तु सर्प, बैल (वा गाय) के आधार पृथिवी को मानना निरी मूर्खता है, और यदि मान भी लियाजाय कि पृथिवी को सर्प, बैल (वा गाय) ने धारण की है, तो उन का धर्त्ता कौन है ? यदि उन का कोई और (मूर्त्तिमान्) धर्त्ता है तो उस धर्त्ता को किस ने धारण किया है ? इत्यादि प्रश्नों का कुछ उत्तर न बन सकेगा। यथाह :—

मूर्त्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था। अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्त्तिः॥

सि० शि०

(अर्थ) यदि पृथिवी का कोई (मूर्त्तः) मूर्त्तिमान् धर्त्ता माना जाय तो उस धर्त्ताका कोई और धर्त्ता मानना पड़ेगा, और उस का कोई अन्य, इसी तरह से कहीं अन्त न पावेगा, अर्थात् "अनवस्था" दोष आवेगा और अन्त में यही मानना पड़ेगा कि पृथिवी अपनी ही शक्ति से स्थित है, अर्थात् उस को किसी मूर्त्तिमान् धर्त्ता की आवश्यकता नहीं है। यथाच—

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥

सूर्य्यसिद्धान्ते

(अर्थ) पृथिवी ब्रह्माण्ड के बीच आकाश में (बिना किसी आधार के) परमेश्वर की धारणारूप परमशक्ति के सहित स्थित है ।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि भूमि का कोई (मूर्त्तिमान्) आधार नहीं है, इस लिये 'सिद्धान्त शिरोमणि, में इस को निराधारा कहा है । अन्यच्च-

भपंजरस्य भ्रमणावलोका-
दाधार शून्या कुरिति प्रतीतिः ॥ सि. शि.

(अर्थ) सब तारागण (नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह) बिना किसी आधार के आकाश में घूमते हैं, और क्योंकि पृथिवी भी एक ग्रह है, इसलिये यह भी आधार रहित ही प्रतीत होती है॥ यों तो बिना आधार के पृथिवी का रहना असम्भव सा मालूम होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो किसी पदार्थ को भी आधार की आवश्यकता नहीं है, यदि उसपर कोई बाहर की (अन्य पदार्थ की) शक्ति क्रिया (अमल) न करती हो। यदि हम एक गेंद को हाथ में लेकर कुछ ऊंचे से छोड़ दें तो वह पृथिवी की आकर्षणशक्ति से भूमि पर आपड़ेगी। यदि पृथिवी में यह अद्भुत शक्ति न होती तो वह गेंद गिरती नहीं, वरन वहीं ठहर जाती जहां कि हमने उसको छोड़ी थी।

(प्रश्न) – बिना किसी आधार के गेंद कैसे ठहर जाती ?

(उत्तर) – क्यों ? नहीं हमने उसको नीचे की ओर नहीं 'गेरा' किन्तु उसको 'छोडदिया' अर्थात् अपना हाथ उस से अलग कर लिया, फिर वह नीचे क्यों गिरी ?

(प्र०) – क्योंकि उसके सम्हालने वाली (आधार) कोई वस्तु नहीं रही, इस लिये वह भूमि पर गिर पड़ी।

(उ०) – गेंद जड़ पदार्थ है वा चेतन ?

(प्र०) – जड़।

(उ०)–तो वह अपने आप कैसे हिल चल सकती है ?

(प्र०)–नहीं हिल चल सकती।

(उ०)–तो फिर चाहे कोई आधार हो या न हो, जब उस को किसी ने गेरा ही नहीं, वह कैसे अपनी जगह छोड कर पृथिवी पर आपड़ी ?

(प्र०)– हां ! अब मैं समझा। निस्सन्देह जब उस को नीचे की ओर को हरकत ही नहीं दीगई अर्थात् हमने केवल अपना हाथ उससे अलग करलिया, तो वह (गेंद) जड़ होने के कारण अपने आप नहीं गिर सकती। फिर वह क्यों गिरी ? किसी अन्य पदार्थ की शक्ति ने उसपर क्रिया (अमल) की होगी।

(उ०) – अवश्य।

(प्र०) – वह कौनसी शक्ति है और किस पदार्थ की है ?

(उ०) – हम देखते हैं कि सब पदार्थ 'पृथिवी पर' गिरते हैं, तो पृथिवी ही में कोई ऐसी शक्ति है जो उन सब को खेंच लेती है। इसको पृथिवी की "आकर्षण शक्ति" कहते हैं। इसमें प्रमाण यह है–

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्
स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत् पततीव भाति
समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे ।। सि. शि-

(अर्थ) पृथिवी अपनी आकर्षणशक्ति से भूतल के सब पदार्थों को अपनी ओर खींचती है, इसलिये वे पदार्थ पृथिवी पर गिरते हुए दिखलाई देते हैं। जब पृथिवी के समीप के सब पदार्थ उसकी अपेक्षा बहुत छोटे होने के कारण, उसकी आकर्षणशक्ति से, पृथिवी पर गिरते हैं तो पृथिवी * कहां को गिरजाय? इसलिये यह शंका कि 'पृथिवी विना आधार के कैसे रहसकती है' सर्वथा निर्मूल ठहरी ।।

इस विषय में बौद्धलोग ऐसा मानते हैं कि पृथिवी भारी होने के कारण नीचे को चली जारही है, परन्तु—

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध मुधा कथम् ।
यातायातं तु दृष्ट्वाऽपि खे यत् क्षिप्तं गुरु क्षितिम् ॥

सि॰ शि॰ गोलाध्याये ।

(अत्र वासना भाष्य) "यदि भूरधो याति तदा शरादिकमूर्ध्वं क्षिप्तं पुनर्भुवं नैष्यति । उभयोरधो गमनात् । अथ भूमेर्मन्दा गतिः शरादेः शीघ्रा। तदपि न । यतो गुरुतरं

---

* सूर्य (जो पृथिवी से बहुत बड़ा है) पृथिवी को अपनी ओर खींचता है, परंतु पृथिवी सूर्य की ओर इसलिये नहीं गिरती कि एक और शक्ति उसको सूर्य से दूर भगाती है। देखो "पृथिव्यादि लोकों का घूमना" ।।

शीघ्रं पतति । ऊर्ध्वगति गुर्वी शरादिरति लघुः । रे बौद्धेदं दृष्ट्वापि भूरधो यातीति बुद्धिः कथमियं तव वृथोत्पन्ना" ।

(भाषार्थ) यदि भूमि नीचे को जाती है तो ऊपर को फेंका हुआ तीर फिर पृथिवी पर न गिरना चाहिये। क्योंकि दोनों नीचे को गिरते हैं। यदि कोई कहे कि भूमि की गति मन्द है और तीर की गति शीघ्र है (इसलिये तीर भूमि पर आपड़ता है) यह असम्भव है। क्योंकि जो वस्तु अधिक भारी होती है वह शीघ्र गिरा करती है। और पृथिवी बहुत भारी है। तीर उसकी अपेक्षा बहुत हलका है। हे बद्ध ऐसा देखकर भी तेरी यह वृथा बुद्धि कैसे हुई कि भूमि नीचे को चली जाती है" ॥

---:0:---

पातालनिवासी

ANTIPODES.

यह बात निश्चित है कि जैसे पृथिवी के इस भाग में मनुष्यादि बसते हैं ऐसे ही दूसरे भाग में भी (जिसको हम पृथिवी के नीचे का भाग वा "पाताल" कहते हैं) रहते हैं। जैसा कि आर्य्यभट्टीय में लिखा है—

यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः ।
तद्वद्धि सर्वसत्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः ॥

(गोलपादे)

(अर्थात्) जिस प्रकार कदम्ब के फूल के सब ओर पंखड़ी होती हैं, उसी प्रकार पृथिवी के सब ओर जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले प्राणी रहते हैं ॥ ऐसा ही सि. शि० में कहा है—

सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः ।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रकरैरिव ॥

(गोलाध्याये)

अर्थ – पृथिवी के सब ओर पर्वत, आराम (बाग), और ग्राम आदि हैं, जैसे कदम्ब के फूल के चारों ओर पंखड़ी होती हैं ॥

यहां बहुत से मनुष्य यह शंका करेंगे कि पाताल निवासी पृथिवी के "नीचे" कैसे बसते हैं, उलटे स्थित होने के कारण गिर क्यों नहीं पड़ते। परन्तु 'नीचे' 'ऊपर' वस्तुतः नियत नहीं हैं । जो पैरों की ओर (अर्थात् पृथिवी की ओर) है उसको 'नीचे' और जो शिर की ओर है उसको 'ऊपर' कहते हैं । इस प्रकार जिसको हम 'ऊपर' मानते हैं उस को पाताल निवासी 'नीचे' और जिसको हम 'नीचे' समझते हैं उसको वे 'ऊपर' मानते हैं, (क्योंकि जो हमारे पैरों की ओर है वह उनके शिर की ओर है)। जैसे हम उस देश (पाताल) को पृथिवी के नीचे का भाग कहते हैं ऐसे ही वे इस देश को पृथिवी का अधोभाग बतलाते हैं । जैसे हम उनको उलटा समझते हैं, और उनके वहां स्थित रहने पर आश्चर्य करते हैं, ऐसे ही वे हमको उलटा समझते है और हमारे यहां स्थित रहने पर विस्मित होते हैं ।

यो यत्र तिष्ठत्यवनिं तलस्था-
मात्मानमस्या उपरिस्थितं च ।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था-
मिथश्च ते तिर्य्यगिवामनन्ति ॥

अधःशिरस्काः कुदलान्तरस्था-
श्छाया मनुष्या इव नीरतीरे ।
अनाकुलास्तिर्य्यगधःस्थिताश्च
तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र ॥

अर्थ – जो मनुष्य जहां रहता है वह पृथिवी को अपने नीचे, और अपने आप को उसके ऊपर मानता है । इस लिये पृथिवी के दो ओर रहनेवाले मनुष्य एक दूसरे को (तिर्य्यगिवामनन्ति) उलटे अर्थात् नीचे की ओर को स्थित समझते हैं । जैसे जल के किनारे खड़ा होकर मनुष्य अपना उलटा प्रतिबिंब देखता है, अर्थात् पैरों के सामने पर (Anti=opposite सामने × Podes=feet पैर) और शिर नीचे की ओर को । इस शंका के उत्तर में, कि वे मनुष्य उलटे कैसे स्थित हैं, गिर क्यों नहीं पड़ते भास्कराचार्य्य जी कहते हैं कि (अनाकुला·········तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र) वे वहां बिना किसी प्रकार की आकुलता के ऐसे ही स्थित हैं जैसे कि हम यहां हैं । क्योंकि–

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् ।
स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ॥
आकृष्यते तत् पततीव भाति ।
समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे ॥ *

* इस श्लोक का अर्थ पीछे कर चुके हैं परन्तु प्रसङ्ग वश फिर लिखा जाता है

अर्थ – पृथिवी अपने ऊपर के सब पदार्थों को आकर्षण-शक्ति से अपनी ओर खींचती है, इसलिये सब पदार्थ पृथिवी पर गिरते हैं और उस पर स्थित रहते हैं। इसलिये कोई पदार्थ पृथिवी पर से कहीं को नहीं गिरसकता।

जैसे हम ऊपर को नहीं उड़जाते, वैसे वे भी ऊपर को नहीं उड़सकते, (क्योंकि जिसको हम 'नीचे गिरना' समझते हैं वह उनके लिये 'ऊपर को उड़ना' है)।

——:o:——

पृथिवी की परिधि और व्यास का मान

"परिधि" —किसी गोल वस्तु की गोलाई के मान को कहते हैं। और उसके बीचों बीच सीधी रेखा को "व्यास" कहते हैं।

७ ६ ९ ४
प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः
१ ८ ५ १
तद् व्यासः कुभुजङ्ग सायक भुवोऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक् पुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांशहृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥

सि॰ शि॰ गणिताध्याये॥

अर्थ – पृथिवी की 'परिधि' ४९६७ योजन है, और 'व्यास' १५८१ योजन लंबा है। दो ऐसे नगरों के, जिन में से एक (विषुवद् वृत्त Equator के) उत्तर में और दूसरा दक्षिण में स्थित हो, पलांतर (Difference between the latitudes of two places) को भूमि की परिधि में गुणा करने से और ३६० पर भाग देने से उन नगरों का योजनों में अन्तर जाना जाता है॥

यदि १ योजन ५ मील के बराबर माना जाय तो पृथिवी की 'परिधि' ४९६७ × ५ अर्थात् २४८३५ मील, और 'व्यास' १५८१ × ५ अर्थात् ७९०५ मील होता है। योरपवासियों ने परिधि २४८५६ मील, और व्यास ७९१२ मील सिद्ध किया है। यह थोड़ा सा भी अन्तर इस कारण से है कि योजन पूरे ५ मील का नहीं होता किन्तु कुछ अधिक होता है। अर्थात् यदि ५—$\frac{१}{२३०}$ मील का एक योजन माना जाय तो पूरे २४८५६ मील की परिधि, और ठीक ७९१२ मील का व्यास आजाता है॥

पुराणों में पृथिवी का विस्तार इतना लम्बा चौड़ा लिखा है कि जिस का कुछ पारावार नहीं, एक २ वृक्ष * की ऊंचाई पृथिवी की परिधि से सहस्रों गुनी और पर्वत की ऊंचाई खर्वों गुनी लिखी है। हम इस भय से कि हमारे पौराणिक भाई इसको "निन्दा" न समझलें, इस विषय में स्वयं कुछ नहीं कहना चाहते किन्तु उनके खण्डनपक्ष में सिद्धान्तशिरोमणि ही के श्लोक देते हैं—

१००००००० २० ९ ६ २० १ ७ ८ २
कोटिघ्नैर्नख नन्द षट्क नख भू भूभृद् भुज ङ्गेन्दुभि-

र्ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।

तद् ब्रह्माण्ड कटाह सम्पुट तटे केचिज्जगुर्वेष्टनं

---

* जम्बू आदि सात द्वीपों में एक २ वृक्ष लिखा है जिन में से पहिले की ऊंचाई १ लाख योजन दूसरे की २ लाख, तीसरे की ४ लाख, चौथे की ८ लाख, पांचवें की १६ लाख, छठे की ३२ लाख, और सातवें की ऊंचाई ६४ लाख योजन लिखी है !!!

केचित् प्राचुरदृश्य दृश्यक गिरिं पौराणिकाः सूरयः॥ *

सि० शि० गणिताध्याये ।

(अर्थ) १८७१२०६९२००००००००० योजन को ज्योतिःशास्त्र के जानने वाले सारी सृष्टि का एक छोटा भाग मानते हैं। बहुत से इस को पृथिवी की परिधि का मान समझते हैं, और 'पौराणिक विद्वान्' इसको केवल एक 'लोकालोक' नामक पर्वत की ऊंचाई बतलाते हैं।

अक्षांश और देशान्तर

LATITUDE AND LONGITUDE.

नगरों और देशों का अन्तर, स्थान, समय, उष्णता आदि अक्षांश और देशान्तर से जाने जाते हैं॥

'अक्षांश' (Latitude) विषुवद् वृत्त रेखा (Equator) से उत्तर या दक्षिण दूरी को कहते हैं। (समकोन में से अक्षांश घटाने से 'लम्ब' के अंश आजाते हैं)। उस के जानने की विधिः-

यन्त्रवेधविधिना ध्रुवोन्नति-

र्या नतिश्च भवतोऽक्षलम्बकौ । सि० शि०

---

* निस्सन्देह ये श्लोक किसी ने पुराणों की अयुक्त बातें देखकर सिद्धान्त शिरोमणि में डाले हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ पुराणों से प्राचीन ही प्रतीत होता है॥

(अर्थ) * तुरीय यन्त्र (Quadrant) से ध्रुव नक्षत्र को उन्नति (Altitude) और नति (Zenith distance) के

---

* (प क ट) विषुवद् वृत्तरेखा (Equator) है और (क) भूमि का केन्द्र है । (अ) एक स्थान है जिसका अक्षांश ज्ञात करना है। (ध) ध्रुव नक्षत्र है जो (द) भूमि के उत्तर ध्रुव अर्थात् मेरु (North pole) की सीध में है, परन्तु पृथिवी से बहुत दूर होने के कारण (ध द) (ध^{१} अ) आदि किरणें समानान्तर हैं; अर्थात् (अ) स्थान पर एक मनुष्य (ध) ध्रुव नक्षत्र को (ध^{१} अ) रेखा की सीध में (ध^{१}) स्थान पर देखता है । क्योंकि पृथिवी चपटी दिखलाई देती है इसलिये (अ) स्थान पर स्थित मनुष्य भूमि को (ग अ ब) धरातल के समान देखता है । (ग अ ध^{१}) कोन को (अ) की "ध्रुवोन्नति"(Altitude) कहते हैं, अर्थात् (अ) स्थान के मनुष्य को (ध^{१}) ध्रुव पृथिवीतल से इतना ऊंचा उठा हुआ दिखलाई देता है । (अ त) रेखा (अ) स्थान की ऊर्द्ध रेखा है (त अ ध^{१}) कोन (अ) स्थान पर ध्रुव की " नति " (Zenith- distance) कहलाता है, अर्थात् (अ) स्थान के मनुष्य को (ध^{१}) ध्रुव (त) शीर्ष विन्दु (Zenith) से इतना नीचा दिखलाई देता है ॥

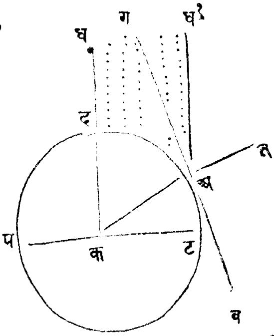

क्योंकि (ध क) और (ध^{१} अ) समानान्तर हैं, इसलिये (ध क त) कोन समान है (ध^{१} अ त) कोन के । परन्तु (ध-क ट) समकोन बराबर है (ग अ त) समकोन के, इसलिये- (ध अ ग) कोन अर्थात् (अ) की "ध्रुवोन्नति" (अ क ट) कोन के समान हुआ । परन्तु (अ क ट) कोन (अ) का " अक्षांश " है, इसलिये (अ) की " ध्रुवोन्नति " (अ) के "अक्षांश" के समान है ॥

अंश जाने जाते हैं, और वेही क्रमसे उस स्थानके "अक्षांश" (Latitude) और "लम्बांश" (Co-latitude) होते हैं ॥

अथवा—

तौ क्रमाद्विषुवदन्ह्यहर्दले

येऽथवानतसमुन्नतालवाः ॥ सि० शि० गोले ॥

(अर्थ) जब दिन रात समान हों उस दिन ठीक १२ बजे सूर्य की "नति" और "उन्नति" के अंश क्रम से उस स्थान के "अक्षांश" और "लम्बांश" होते हैं ॥

भूगोल तथा देश देशान्तरों के नकशों में अक्षांश उन कल्पित रेखाओं से जाना जाता है जो विषुवद् वृत्त के समानान्तर दोनों मेरु (Poles) तक खिचो रहती हैं ॥

"देशान्तर" (Longitude) किसी नियत मध्य रेखा से पूर्व वा पश्चिम दूरी को कहते हैं । नक़शा में 'देशान्तर' उन कल्पित वृत्तों से जाना जाता है, जो दोनों मेरुओं (Poles) को काटते हुए खिचे रहते हैं ॥

यह नियत मध्यरेखा (Prime meridian) किसी देश में किसी स्थान में हो गणित में कुछ अन्तर नहीं

(ध' क्ष त) कोन और (ध क त) कोन समान सिद्ध होचुके हैं। परंतु (ध' क्ष त) कोन (क्ष) स्थान को "नति" है, और (ध क त) कोन (क्ष) स्थान का 'लम्ब' है, इसलिये (क्ष) स्थान को 'नति' (क्ष) के 'लम्ब' के समान है ॥

जिस स्थान के 'अक्षांश' और लम्बांश मालूम करने हों, तुरीय यंत्र से उस की 'ध्रुवोन्नति' और 'नति' जाने, और पूर्वोक्त रीति से यह सिद्ध हो है कि ध्रुवोन्नति अक्षांश के और नति लम्बांश के समान है ॥

आता। अंगरेज़ों की नियत मध्यरेखा लन्दन के पास एक ग्राम 'ग्रीनिज, (Greenwich) में है। फरासीसी लोग देशान्तर को फ्रांस देश की राजधानी 'पेरिस' (Paris) की मध्यरेखा से मापते हैं, और योरप के अन्य देश वाले प्रायः 'फेरो' * टापू की मध्यरेखा से मापते हैं। इस देश में यद्यपि 'ग्रीनिज' की ही नियत मध्यरेखा मानी जाती है परन्तु बहुत से कामों के लिये 'मद्रास' नगर की मध्यरेखा से भी काम लिया जाता है। प्राचीन आर्य्य 'उज्जैन' की मध्यरेखा से देशान्तर का गणित करते थे। यथाहः—

यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥

सि० शि०

(अर्थ) जो रेखा लङ्का और उज्जैन के ऊपर को जाती हुई, और कुरुक्षेत्रादि देशों को छूती हुई दोनों ध्रुवों के ऊपर को जाती है, वह भूमि की नियत मध्यरेखा है॥

नियत मध्यरेखा से किसी स्थान का 'देशान्तर' वा 'देशान्तर'घटिका' निम्नलिखित रीति से जाने जाते हैं:—

प्राग्भूविभागे गणितोत्थ काला-
दनन्तरं प्रग्रहणं विधोः स्यात्।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या
भवन्ति "देशान्तर नाड़िकास्ताः" ॥ १ ॥

---

* यह कनारी के टापुओं (Canary islands) में से है।

तद् घ्नं स्फुटं परिहृतं कुवृत्तं
भवन्ति "देशान्तरयोजनानि" ॥ २ ॥

सि० शि०

(अर्थ) जिस दिन चन्द्रग्रहण पड़ने को हो उस दिन घटिकायंत्र से ग्रहण का स्पर्शकाल जाने। यदि उस समय के पश्चात् ग्रहण दिखलाई दे, तो जानना चाहिये कि देखने वाला 'पूर्व देशान्तर' (अर्थात् नियत मध्यरेखा से पूर्व) में स्थित है। यदि गणित से जाने हुए समय के पूर्व हो ग्रहण दिखलाई दे तो देखने वाला 'पश्चिम देशान्तर' में स्थित है। जिस समय ग्रहण दिखलाई दे और जो स्पर्शकाल गणित से ज्ञात हो, उन दोनों के अन्तर को "देशान्तर घटिका" कहते हैं, (अर्थात् उस स्थान में नियत मध्यरेखा से उतनी घड़ी पहिले वा पीछे सूर्योदय होता है ॥ १ ॥

इन देशान्तर घटिकाओं को पृथिवी की स्पष्ट परिधि में गुणा करने और ६० में भाग देने से उस स्थान का "देशान्तर" योजनों में मालूम होजाता है ॥ २ ॥

इस गणित से एक "देशान्तर घटिका" के $\frac{१ \times ४९६७}{६०} =$ ८२ $\frac{४}{५}$ योजन, और एक घंटे के $\frac{२\frac{१}{२} \times ४९६७}{६०}$ वा $२\frac{१}{२} \times ८२\frac{४}{५}$ $= २०७$ योजन आते हैं जो कि भूपरिधि का $\frac{४९६७}{२०७} = \frac{१}{२४}$ भाग अर्थात् १५ अंश (15°) होते हैं। तात्पर्य इस का यह है कि नियत मध्यरेखा से १५ अंश (15 degrees)

अर्थात् २०७ योजन वा १०३५ मील पूर्व वा पश्चिम देशान्तर में १ घंटा पहिले वा पश्चात् सूर्य्योदय होगा। और इसी भांति से जिस देशान्तर में नियत मध्यरेखा से १ घण्टा पूर्व व पश्चात् सूर्य्योदय होगा, वह देशान्तर नियत मध्यरेखा से २०७ योजन अर्थात् १०३५ मील पूर्व वा पश्चिम होगा। यही यौरपवासियों ने सिद्ध किया है॥

अंगरेज़ लोग इसी हिसाब से देशान्तर नापते हैं, केवल इतना ही भेद है कि "देशान्तरघटिका" जानने के लिये नियत मध्यरेखा (अर्थात् ग्रीनिज वा लन्दन) का समय एक घड़ी से जाना जाता है जिस को "क्रौनोमेटर" (Chronometer कालमापक यन्त्र) कहते हैं। आर्य्य लोग "देशान्तरघटिका" पूर्वोक्त रीति के अनुसार चन्द्रग्रहण से मालूम करते थे। परन्तु इस घड़ी से बहुधा ठीक समय ज्ञात न होने के कारण, ठीक २ देशान्तर नहीं ज्ञात होसकता। क्लार्क साहब (C. B. Clarke M. A. F. L. S., F. G. S.) अपनी पुस्तक ज्यागरेफिकल रीडर (Geographical Reader) के २१ पृष्ठ में स्वयं लिखते हैं—

It is difficult to get a Chronometer that is quite trustworthy; and hence (though there were other astronomical ways of finding the Greenwich time at any station), till of late years we did not know *with extreme exactness* the longitudes of distant places.

(अर्थ) ऐसी घड़ी (क्रौनोमेटर) का मिलना अति दुष्कर है कि जिसके समय पर पूरा २ भरोसा किया जाय।

इसी कारण से (यद्यपि हर जगह ग्रीनिज का समय जानने के लिये चन्द्रग्रहणादिज्योतिष् सम्बन्धी अन्य भी उपाय थे) हम गतवर्षों में दूर के स्थानों का देशान्तर बिलकुल ठीक ठीक नहीं जान सके ।

यह अंगरेजी भाषा का प्रत्यक्षर अनुवाद है जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों को देशांतर जानने का एक ऐसा उपाय ज्ञात था कि जो अंगरेजों की रीति से कहीं बढ़कर था, जिस में किसी प्रकार की भूल की सम्भावना न थी, और जिसको उक्त ग्रन्थकार स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं कि चन्द्रग्रहणादि ज्योतिष् सम्बन्धी विधियों ही से ठीक २ देशान्तर घटिका जानी जाती हैं॥

पृथिव्यादि लोकों का घूमना

आकर्षणशक्ति के विषय में कहा गया है कि भूमि अपने ऊपर के सब पदार्थों से बहुत बड़ी होने के कारण उनको अपनी ओर खींचती है। ऐसे ही सूर्य्य जो पृथिवी से १४ लाख गुना बड़ा है भूमि को अपनी ओर खींचता है। यदि केवल यह सूर्य्य की आकर्षणशक्ति ही पृथिवी पर क्रिया करती तो निस्संदेह पृथिवी सूर्य्य पर गिरकर नष्ट भ्रष्ट होजाती, परन्तु उस जगत्पालक परमात्मा ने उस को एक इसके विरुद्ध (प्रवह) शक्ति (Centrifugal force) दी है जिससे पृथिवी एक सीधी रेखा में चलने का (अर्थात् अपनी कक्षा Orbit से भागने का) प्रयत्न करती है। यह दोनों शक्तियें भूमि पर एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करती हैं।

जैसे यदि एक नौका को दो मनुष्य नदी के दोनों तटों पर खड़े होकर, रस्सों से आगे को खींचें, तो वह नौका न इस तट की ओर को जायगी, न दूसरे तट की ओर, वरन दोनों तट के बीच अर्थात् नदी की धारा में को चलेगी। ऐसे ही इन दोनों शक्तियों का परिणाम यह होता है कि पृथिवी न तो सूर्य की ओर जाती है और न सीधी रेखा में चलती है, किन्तु इन दोनों शक्तियों के बीच रहती है, अर्थात् (सूर्य के चारो ओर) एक परिधि में घूमती है जिस को भूमि की 'कक्षा' (Orbit) कहते हैं। परमेश्वर ने सूर्य को इसी-लिये रचा है कि पृथिव्यादि ग्रहों को प्रकाशित करे और आकर्षण से अपनी २ कक्षा में स्थित करे। यथाहः—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

यजु० अ० ३३ मं० ४३॥

(अर्थ) (सविता देवः) प्रकाशस्वरूप सूर्य (आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानः) आकर्षण गुण के साथ वर्त्तमान (मर्त्यं निवेशयन्) लोक लोकान्तरों को अपनी २ कक्षा में स्थित करता हुआ, (अमृतं च) और सब प्राणि अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृत का प्रवेश करता हुआ, और (हिरण्ययेन रथेन *) प्रकाशमय और रमणीयस्वरूप से (भुवनानि) पृथिव्यादि लोकों को

* रथ=रमणीय। निरु० अ० ९ खं० ११

(पश्यन्) प्रकाशित करता हुआ (याति) अपनी धुरी पर घूमता है ॥

यथाच-

यदा सूर्य्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥

ऋ० अ० ६ अ० १ व० ६ मं० ५ ॥

(अर्थ) (यदा) जिस समय परमेश्वर ने (अमुं) इस (शुक्रं ज्योतिः) अनन्त तेजोमय प्रकाशस्वरूप (सूर्य्यं) सूर्य को (दिवि) आकाश में (अधारयः) रचकर धारण किया,(आदित्) तत्पश्चात् (विश्वा भुवनानि) पृथिव्यादि सब लोकों को (येमिरे) नियमपूर्वक अर्थात् सूर्य की आकर्षणशक्ति से अपनी २ कक्षा में स्थित किया ।

इस प्रकार से भूमि अपनी कक्षा में स्थित होकर सूर्य की परिक्रमा करती है । यथाहः-

या गौर्वर्त्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः । सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० १० मं० १ ॥

(अर्थ) (या) जो (गौः *) पृथिवी (अवारतः)

---

* पृथिवी का नाम संस्कृत में "गौ" भी है जिसके अर्थ "गच्छतीति गौः" जो चलती है सो गौः (भूमि) है । इस से भी सिद्ध है कि आर्य लोग भूमि का चलना मानते थे ।

निरन्तर अर्थात् सदा (पयो दुहाना) अन्न, रस, फल, फूलादि पदार्थों से प्राणियों को पूर्ण करती, तथा (व्रतनीः) अपने नियम का पालन करती, (प्रब्रुवाणा) परमेश्वर की महिमा का उपदेश करती (दाशुषे वरुणाय) दानी और श्रेष्ठ जन को (देवेभ्यः) और विद्वानों को (हविषा दाशत्) अनेक सुख देती (वर्त्तनिं) अपनी कक्षा में (विवस्वते) सूर्य्य के (पर्य्येति) चारों ओर घूमती है ॥

पृथिवी केवल सूर्य के चारों ओर ही नहीं घूमती, किन्तु साथ ही साथ अपनी (अक्ष) कीली पर भी घूमती है, जैसे लट्टू अपनी कीली पर भी घूमता है और अपनी जगह से भी हटता जाता है, और जैसे गाड़ी का पहिया अपनी धुरी पर घूमता है और साथ ही साथ सड़क पर भी घूमता जाता है।

इसमें प्रमाण यह है-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजु० अ० ३ मं० ६

(अर्थ) (अयम्) यह (गौः) पृथिवी (मातरं*)

* यहां जल को अलंकार रूप से पृथिवी की माता कहा है।
यथाहः—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः 'अद्भ्यः पृथिवीत्यादि'।
तैत्ति० उपनिषदि ॥

जल को (असदत्) प्राप्त होकर, अर्थात् जल के सहित (पृश्निः) अन्तरिक्ष में (आक्रमीत्) आक्रमण करती है अर्थात् अपनी धुरी पर घूमती है। (च) और (पितरम्†) सूर्य के भी (पुरः प्रयन्) चारों ओर घूमती है॥

इस विषय में बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शंका किया करते हैं, जैसे-

(प्रश्न) – यदि पृथिवी चलती है तो हिलती क्यों नहीं ?

(उत्तर) – न हिलने का तो कारण स्पष्ट है। देखो गाड़ी जब ऊंची नीची जगह में चलेगी तो साफ सड़क की अपेक्षा अधिक हिलेगी, और सड़क की अपेक्षा पानी पर नौका में कम हाल लगती है, और विमान में जो हवा में चलता है नौका से भी बहुत कम हाल लगती है। तो ऐसी जगह में चलने से कि जहां हवा भी नहीं है पृथिवी कैसे हिल सकती ?

प्र०–अच्छा यदि पृथिवी चलती है तो सब नगर ग्राम जहां के तहां क्यों बने रहते हैं, छूट क्यों नहीं जाते ?

उ०–वाह अच्छी शंका की! चलने फिरने को तो हम तुम भी चलते फिरते हैं, तो क्या हमारी तुम्हारी

---

† यहां सूर्य को अलंकार रूप से पृथिवी का पिता कहा है क्योंकि सूर्य ही से पृथिवी की (अपनी कक्षा में) स्थिति, मनुष्यों का जीवन, वर्षा, वनस्पति आदि की उत्पत्ति होती है।

आंख नाक जो मुख पर हैं पीठ पर आजाती हैं ? यदि भूमि का कुछ भाग चलता और कुछ न चलता तो अवश्य नगर और ग्राम हट जाते, परन्तु यह भूगोल तो सब चलता है फिर नगर और ग्राम वहीं बने रहेंगे कि जहां वे स्थित हैं, जैसे यदि एक गेंद पर कुछ विन्दु बना दिये जांय और वह गेंद घुमा दी जाय तो वे विन्दु वहीं बने रहेंगे जहां हमने बनाये थे ॥

प्र०—यह तो मैं समझा परन्तु पृथिवी चलती हुई मालूम क्यों नहीं होती ?

उ०—कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या

यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः ॥

सि० शि०

(अर्थ) जैसे कुम्हार के घूमते हुए चाक (चक्र) पर बैठे हुए कीड़े उसकी गति को नहीं जान सकते, ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई नहीं ज्ञात होती। अन्यच्च:—

अनुलोमगतिर्नौस्थ: पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।

अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥

आर्य्यभटीये ।

(अर्थ) जैसे नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे की स्थिर वस्तुओं को दूसरी ओर को चलते हुए देखता है, ऐसे ही मनुष्यों को सूर्य्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं पश्चिम की ओर चलते हुए दीखते हैं और पृथिवी स्थिर मालूम होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है ॥

सूर्य का उदय अस्त और दिन रात होने का कारण भी पृथिवी का अपनी कीली पर घूमना है। अर्थात् यह भू-गोल २४ घंटे (६० घड़ी) में एक बार अपनी धुरी (कीली) पर घूम जाता है, इस अन्तर में जो भाग पृथिवी का सूर्य के सामने आजाता है वहां "दिन" और जो आड़ में आजाता है वहां "रात" होती है। अभिप्राय यह है कि सूर्य वस्तुतः चलता नहीं, भूमि के घूमने ही से उदय और अस्त होता दिखलाई देता है। इस में प्रमाण-

भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्यप्रतिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रहनक्षत्राणाम् ॥

आर्यभट्टः

(अर्थ) सूर्यादि सब नक्षत्र स्थिर हैं, पृथिवी ही बेर २ अपनी धुरी पर घूमकर प्रतिदिवस इन के उदय और अस्त का संपादन करती है॥ अन्यच्च-

अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वा अथात्मानं विपर्यस्यते अहरेवावस्तात् कुरुते रात्रिम् परस्तात्। स वै एष न कदाचन निम्रोचति। न ह वै कदाचन निम्रोचति ॥

ऐतरेय ब्राह्मणे।

(अर्थ) सूर्य्य न कभी छिपता है और न निकलता है, जब वह रात्रि के अन्त को प्राप्त होकर बदलता है अर्थात् भूमि के घूमने के कारण पश्चिम से फिर पूर्व में दिखलाई देता है, और पृथिवी के इस भाग में दिन और दूसरे भाग

में रात्रि करता है, तब लोग सूर्य्य का "उदय" मानते हैं। इसी प्रकार जब दिन के अन्त को प्राप्त होकर सूर्य्य पश्चिम में दिखलाई देता है, और भूमि के इस भाग में रात्रि और दूसरे भाग में दिन करता है, तब लोग सूर्य्य का "अस्त" मानते हैं। वास्तव में न वह कभी छिपता है न निकलता है॥

इङ्गलिस्तान के सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ प्रोफेसर मौनियर विलियम्स (Prof. Monier Williams) अपनी "इण्डियन विज़्डम" (Indian wisdom) नामक पुस्तक में "ब्राह्मण" ग्रन्थों के विषय के अन्त में पूर्वलिखित ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण देकर लिखते हैं कि "We may close the subject of Brahmans by paying a tribute of respect to the acuteness of the Hindu mind which seems to have made some shrewd astronomical guesses more than 2000 years before the birth of Copernicus" (Indian wisdom pp 37.).

(अर्थ) हम हिन्दुओं (आर्य्यों) की बुद्धि की तीक्ष्णता को, जिसने "कोपरनिकस" के जन्म के दो सहस्र वर्ष से अधिक से पूर्व ही ज्योतिष् (खगोलविद्या) संबन्धी कुछ चतुर विचार किये थे, सन्मानरूपी भेंट अर्पण कर के, "ब्राह्मण" (ग्रन्थों) के विषय को समाप्त करते हैं॥

यह "कोपरनिकस" जरमनी क्या सारे यौरप भर के सब से बड़े ज्योतिर्विदों में से हुआ है। यौरप में सब से पहले इसी ने इस बात को सिद्ध किया कि पृथिवी सूर्य्य की परिक्रमा करती है और सूर्य्य स्थिर है।

इससे पूर्व इसके विपरीत सिद्धान्त माना जाता था जो

टौलिमी का सिद्धान्त (Ptolemaich theory) कहलाता था। कोपर निकस सन् १४७३ ई० में जन्मा और १५४३ ई० में प्राणान्त हुआ। उसने अपना सिद्धान्त "De Revolutionibus orbium Cœlestium" नामक पुस्तक में सिद्ध किया जिस को उसने बड़े परिश्रम से १५३० ई० में समाप्त किया। परन्तु न जाने किस कारण से उसने इस पुस्तक को अपने जीवनसमय में प्रकाशित नहीं किया और यह उस के देहान्त के पश्चात् १५४३ ई० में छपवाई गई। यौरप वाले बहुत दिनों तक दोनों सिद्धान्त मानते रहे। इङ्गलिस्तान में १७ वीं शताब्दी के अन्त तक दोनों माने जाते थे। पर १५०० ई० से पूर्व यौरप में किसी को भी यह भान न हुआ था कि भूमि घूमती है। परन्तु पूर्वोक्त वेदमंत्रों से सिद्ध है कि आर्य्यलोग सृष्टि की आदि से ही (क्योंकि वेदों का प्रकाश सृष्टि की आदि में हुआ था) जानते थे कि भूमि चलती है और सूर्य्य पृथिवी की अपेक्षा स्थिर है, और ऐसा ही "ऐतरेय ब्राह्मण" और "आर्य्यभट्ट" के उक्त वचन से भी सिद्ध होता है। और क्या आश्चर्य्य है कि "कोपरनिकस" ने भी (जो जरमनी देश का रहने वाला था कि जिस देश में संस्कृत का बहुत प्रचार चला आता है) संस्कृत के किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस सिद्धान्त को देख कर अपनी गणितविद्या से (जिस में वह निस्सन्देह बहुत निपुण था) उस को सिद्ध कर दिया हो ?।

जानना चाहिये कि ये सब तारागण जो रात्रि समय आकाश में चमकते हुए दिखलाई देते हैं तीन प्रकार के हैं—(१) "नक्षत्र" Fixed stars जो ग्रहों में प्रकाश और उ-

पहुंचाते हैं और अपनी आकर्षणशक्ति से उन्हें अपनी कक्षा में स्थित रखते हैं। (२) "ग्रह" Planets जो किसी नक्षत्र के चारों ओर घूमते हैं। और (३) "उपग्रह" Satellites जो ग्रहों की परिक्रमा करते हैं। इन में से "नक्षत्र" जैसा कि पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ, स्थिर हैं, अर्थात् किसी लोक लोकांतर के चारों ओर नहीं घूमते परन्तु अपनी धुरी पर सदा घूमते रहते हैं। यथाह—

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन
ग्रहैः सहैतद् भगणादि संस्थैः ।
शश्वद्भ्रमे विश्वसृजा नियुक्तं
तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे ॥

सि० शि० गणिताध्याये

(अर्थ) सर्व जगदुत्पादक परमेश्वर ने प्रत्येक नक्षत्र को रचकर, अपनी २ कक्षा में स्थितग्रहों के साथ निरन्तर भ्रमण में नियुक्त किया है। और प्रत्येकभपंजर (तारों के समूह) के उत्तर और दक्षिण अंत में एक २ ध्रुव Pole star नियत किया है जो स्थिर है अर्थात् केवल अपनी धुरी पर ही घूमता है ॥

इसके अनुसार सूर्य, पृथिव्यादि ग्रहों के मध्य में केन्द्र के समान स्थित हुआ सदा अपनी कीली पर घूमता रहता है, और पृथिव्यादिग्रह चन्द्रमा आदि उपग्रहों के साथ उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। वास्तव में ये सब तारे पश्चिम से पूर्व को चलते हैं, परन्तु पृथिवी के घूमने के कारण पूर्व से पश्चिम को जाते दिखलाई देते हैं। इस में प्रमाण—

ततोऽपराशाभिमुखं भपञ्जरे
स खेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि ।
तदल्पगत्यैन्द्रदिशं नभश्चरा-
श्चरन्ति नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु ॥

सि० शि० गणिताध्याये ।

(अर्थ) यद्यपि सब तारागण अपने २ ग्रहों के साथ शीघ्रगति से पूर्व से पश्चिम को घूमते दिखलाई देते हैं परन्तु वस्तुतः सब ग्रह अल्पगति से अपनी २ कक्षा में पश्चिम से पूर्व को चलते हैं ॥ अन्यच्च—

भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो
भ्रमत्यजस्रं प्रवहानिलेन ।
यान्तो भचक्रे (लघुपूर्वगत्या)
खेटास्तु तस्या (परशीघ्रगत्या) ॥

सि० शि०

(अर्थ) प्रवह शक्ति (Force of inertia) के कारण सब तारागण सहित ग्रहों के सदा घूमते रहते हैं, । ये सब 'लघुगति से पूर्व की ओर को' घूमते हैं, परन्तु 'शीघ्रगति से पश्चिम को' जातेहुए दिखलाई देते हैं ॥

इस विलोमगति (अर्थात् ग्रहों के पश्चिम की ओर जाते हुए दीखने) का कारण भूमि का अपनी धुरी पर घूमना है । जैसे रेलगाडी में बैठाहुआ मनुष्य सड़क के किनारे को उलटी ओर को दौड़ते हुए देखता है और-

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम् ॥

आर्यभट्ट

(अर्थ) जैसे नौका में बैठे हुए मनुष्य को पर्वतादि किनारे की अचल (ठहरी हुई) वस्तुएं उलटी ओर को चलती हुई दिखलाई देती हैं, ऐसेही पूर्व की ओर को चलती हुई पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यों को अचल (स्थिर) तारे भी पश्चिम को जाते हुए दिखलाई देते हैं ॥

यदि सब ग्रह उपग्रह भी सूर्यवत् स्थिर होते तो सब तारागण सूर्य की भांति पश्चिम की ओर को जाते हुए २४ घंटे में पृथिवी की पूरी परिक्रमा करते दिखलाई देते। परन्तु ये कुछ (अल्पगति से) 'पूर्व की ओर को' भी चलते हैं, इसलिये पूरी परिक्रमा नहीं कर सकते वरन उतनी कम करते हैं कि जितना पूर्व को चलते हैं ॥

(उदाहरण) चन्द्रमा २९$\frac{१}{२}$ दिन (दो पक्ष) में पृथिवी की परिक्रमा करता है, अर्थात् एक दिन में $\frac{१}{२९\frac{१}{२}} = \frac{२}{५९}$ भाग अपनी कक्षा का तै करता है (यही इस की 'अल्पगति' है) । अब यदि चन्द्रमा स्थिर होता तो (पूर्वोक्त प्रमाणों से) पश्चिम की ओर चलते हुए एक दिन में भूमि की परिक्रमा करता हुआ दिखलाई देता । परन्तु उक्त गणित से यह $\frac{२}{५९}$ भाग अपनी कक्षा का पूर्व की ओर तै करता है । परिणाम इन दोनों का यह हुआ कि चन्द्रमा $१ - \frac{२}{५९} = \frac{५७}{५९}$ भाग अपनी कक्षा का तै करता हुआ

दिखलाई देता है (यही चन्द्रमाकी 'शीघ्रगति' है) । इसी कारण एक तिथि को चन्द्रमा जिस समय जहां दिखलाई देता है, अगले दिन उसी समय उससे $\frac{२}{५८}$ भाग ऊपर दिखलाई देता है। और इसी प्रकार बढ़ते बढ़ते २८$\frac{१}{२}$ दिन (दो पक्ष) के पश्चात् एक चक्र पृथिवी का पूरा करके फिर वहीं दिखलाई देता है जहां पहिली तिथि को दीखा था।

आशय इस सब का यह है कि-यद्यपि चन्द्रमा 'अल्प-गति' से (अर्थात् प्रतिदिन अपनी कक्षा का $\frac{२}{५८}$ भाग ते करने के हिसाब से) 'पूर्व की ओर' को चलता है, परन्तु पृथिवी के घूमने के कारण 'पश्चिम की ओर' 'शीघ्रगति से' (अर्थात् प्रतिदिन $\frac{५७}{५८}$ भाग ते करने के हिसाबसे) चलता हुआ दिखलाई देता है। ऐसे ही अन्य ग्रह उपग्रहों के विषय में जानो ॥

चन्द्र और सूर्य्य ग्रहण ॥

पुराणों में ग्रहण का अद्भुत कारण लिखा है। "जिस समय विष्णुजी मोहिनी का रूप धर अमृत बांट रहे थे' 'राहु' नाम एक राक्षस देवता का वेष धर कर उन की पंक्ति में आबैठा। जब विष्णु भगवान् ने उस को अमृत दिया वह उसी समय पीगया। परन्तु 'सूर्य्य' और 'चन्द्रमा' ने चुगली खा दी कि यह राक्षस है। विष्णु ने क्रोध कर चक्र से राहु का शिर काट डाला, परन्तु वह अमृत पी चुका था इसलिये न मरा। इस कारण से वह

सूर्य और चन्द्रमा को जहां पाता है वहीं ग्रस लेता है, परन्तु वे उस की गरदन के छेद में होकर निकल जाते हैं"। यह पुराणों के अनुकूल ग्रहण का संक्षिप्त वृत्तान्त है, परन्तु युक्ति और वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध होने से यह कदापि सत्य नहीं होसकता।

वेद और ज्योतिष के ग्रन्थों में ग्रहण का कारण वही लिखा है जो यौरप निवासियों ने सिद्ध किया है।

जो नीचे लिखा जाता है-

जिस प्रकार पृथिवी सूर्य्य की परिक्रमा करती है इसी प्रकार चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता है। इस प्रकार घूमते हुए, जब सूर्य्य पृथिवी और चन्द्रमा-तीनों एक सीध में आजाते हैं तब ग्रहण पड़ता है। यदि पृथिवी और चन्द्रमा की कक्षा एक ही धरातल में होती तो प्रतिमास एक सूर्य्यग्रहण और एक चन्द्रग्रहण होता। क्योंकि प्रत्येक पूर्णमासी को सूर्य्य और चन्द्र के बीच में पृथिवी आजाती, इसलिये चन्द्रग्रहण पड़ता, और प्रत्येक अमावास्या को पृथिवी और सूर्य्य के बीच चन्द्रमा आजाने से सूर्य्यग्रहण पड़ता। परन्तु दोनों कक्षाओं के एक धरातल में न होने से ऐसा नहीं होता, किन्तु ग्रहण कभी कभी पड़ता है, जिस का दिवस और समय गणितज्ञ ठीक ठीक जान-लेते हैं॥

चन्द्र ग्रहण का कारण समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि पृथिवी के समान चन्द्रमा भी सूर्य्य से प्रकाशित होता है। यथाहि-

दिवि सोमो अधिश्रितः। अथर्ववेदे कां० १४ अ० १ मं० १।

(अर्थ) चन्द्रलोक सूर्य के आश्रित हो कर प्रकाशित होता है। तथाच—

नित्यमधस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम्।
स्वच्छाययान्यदसितं कुम्भस्येवातपस्थः ॥ १ ॥ सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरविहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥

(बृहत्संहितायाम्)

(अर्थ) धूप में रक्खे हुये घड़े के समान, चन्द्रमा का आधा भाग सूर्य्य की किरणों से प्रकाशित हो जाता है और दूसरा आधा अपनी छाया से अन्धकार में रहता है ॥ १ ॥ सूर्य्य की किरणें चन्द्रमा पर (जिस के बहुत से भाग में जल भी भरा हुआ है) पड़ कर प्रतिबिम्बित हो कर लौट आती हैं, और रात्रि के अन्धकार को नाश करती हैं, जैसे धूप में रक्खे हुए दर्पण पर सूर्य की किरणें पड़ कर मन्दिर के भीतर चली जाती हैं ॥ २ ॥ ऐसा ही सि० शि० में लिखा है—

तरणि किरण सङ्गादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति। तदितरदिशि बाला कुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः॥

(अर्थ) चन्द्रलोक का सूर्य्य की ओरवाला भाग उस की किरणों के सम्पर्क से प्रकाशित हो कर चमकता है।

दूसरी ओर वाला भाग धूप में रक्खे हुए घट के सदृश अपनी मूर्त्ति की छाया से अन्धकार में रहता है ॥

इस लिये जब सूर्य्य और चन्द्रमा के बीच में पृथिवी आ जाती है, तो सूर्य्य का प्रकाश चन्द्रमा में जाने से रुक जाता है, अर्थात् चन्द्रमा में अन्धकार होने लगता है। (इस से यह स्पष्ट है कि उस समय चन्द्रलोक में सूर्य्य ग्रहण होता है)। जितने भाग में अन्धकार होता जाता है उतना भाग कटता सा दिखलाई देता है। इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं। ज्यों ज्यों चन्द्रमा पृथिवी और सूर्य्य की सीध से निकलता जाता है, उस में सूर्य्य की किरणें पहुंचने लगती हैं। इसी को उग्रहण वा मोक्ष कहते हैं ॥

इसके विरुद्ध, जब पृथिवी और सूर्य्य के बीच में चन्द्रमा आ जाता है, तब सूर्य्य चन्द्रमा की ओट में आने लगता है, और जितना भाग चन्द्रमा की आड़ में आता जाता है उतना भाग कटता सा दिखलाई देता है। इसी को सूर्य्य ग्रहण कहते हैं। जब पूरा सूर्य्य ग्रहण पड़ता है, तब पृथिवी पर प्रकाश बहुत कम हो जाता है। इस से स्पष्ट है कि उस समय चन्द्रलोक में पृथिवी ग्रहण पड़ता है ॥

यह चन्द्र और सूर्य्य ग्रहण का ठीक कारण है। ज्योतिष् के सब सद्ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है। यथा हि—

छादयति शशी सूर्य्यं शशिनं च महती भूच्छाया।

(आर्य्यभट्टीये)

(अर्थ) सूर्य्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य्य को, और चन्द्र-ग्रहण में पृथिवी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है ॥

तथाच—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत् ।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

सूर्य्यसिद्धान्ते

(अर्थ) सूर्य्यग्रहण में चन्द्रमा बादल के सदृश सूर्य्य को ढक लेता है । और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा पूर्व की ओर जाता हुआ पृथिवी की छाया में आ जाता है ॥ बृहत्संहिता में भी यही लिखा है—

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः । प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धात् ॥

बृ० सं० अ० ५

(अर्थ) चन्द्रमा अपने ग्रहण में भूमि की छाया में और सूर्य्यग्रहण में सूर्य्य और पृथिवी के मध्य में आजाता है । इस से ग्रहण होताहै ॥

तथाच—

पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति । तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान् मोक्षोऽस्य निस्सरतः ॥

सि० शि० गोलाध्याये ।

(अर्थ) जब चन्द्रमा पूर्व को ओर को जाता हुआ

भूमि की छाया में चला जाता है, तब ग्रहण पड़-ता है। जब छाया से निकलता है, तब मोक्ष वा उग्रहण होता है॥

अपिच—

भूभाविधुं विधुरिनं ग्रहणेऽपि धत्ते॥

सि० शि० गो०

यही अभिप्राय ग्रहलाघव में कहा गया है—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

(अर्थ) चन्द्रग्रहण में भूमि की छाया चन्द्रमा को, और सूर्य्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य्य को ढक लेता है॥

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्य्यैः।

राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः॥

वृ० सं० अ० ५

(अर्थ) यह दिव्यदर्शी आचार्य्यों ने सत्यशास्त्रों के अनुकूल ग्रहण का कारण कहा है। इस में राहु कारण नहीं है॥

कविवरशिरोमणि कालिदास भी कहते हैं—

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिम-तः प्रजाभिः॥

रघुवंशे। सर्ग १४। श्लोकः ४०

(अर्थ) चन्द्रग्रहण में पृथिवी की छाया चन्द्रमा पर पड़-ती है, परन्तु लोग उस को शुद्ध चन्द्रमा में एक कलङ्क बत-लाते हैं॥ इस से और बृहत्संहिता के पूर्वोक्त श्लोक से

विदित होता है कि कालिदास के *समय में केवल विद्वान् ही इस बात का ठीक कारण जानते थे, साधारण मनुष्य चन्द्रग्रहण को चन्द्रमा का कलङ्क वा राहु का ग्रसना समझते थे, अर्थात् उस समय अविद्यारूपी अन्धकार भारत में फैलना प्रारम्भ हो गया था ॥

आर्य्य लोग ग्रहण का ठीक कारण बहुत प्राचीन समय से जानते थे । यथाह :—

यं वै सूर्य्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुराः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्या अन्ये अशक्नुवन् ॥
ऋग्वेदस्याश्वलायनशाखायाम् । ४ अष्टके ।

(अर्थ) सूर्य्यग्रहण में स्वतःप्रकाश सूर्य्य को स्वयं प्रकाशरहित चन्द्रमा अन्धकार से ढक लेता है । अत्रि ऋषि ने इस को जाना, अन्य (उन से पूर्व) इस को नहीं जान सके ॥ यह प्रमाण वेद की शाखा का है, जो वेद को छोड़ सब से प्राचीन पुस्तक हैं । इस से स्पष्ट है कि आर्य्य लोग वैदिक समय से ही ग्रहण का ठीक कारण जानते थे, कि जब बहुत से देशवालों ने सभ्यता और विद्या का नाम भी न सुना था ॥

—0—

* वृहत्संहिता के कर्ता वराहमिहिर और कालिदास एक ही समय में हुए हैं, क्योंकि दोनों विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे ।

फलित समीक्षा ॥

पाठक वर्ग ! आप को स्मरण होगा कि पूर्वलिखित मंत्र और श्लोक केवल उदाहरण के लिये दिये गये हैं । क्या इनसे स्पष्ट सिद्ध नहीं है कि ज्योतिष् (खगोल विद्या) आर्यों में भली भांति से प्रचरित थी ? हे नव शिक्षित विद्यार्थियो! क्या उक्त प्रमाणों से स्पष्ट विदित नहीं होता कि जिन सिद्धान्तों पर यौरपवासी अपनी सभ्यता का अभिमान करते हैं उन सिद्धान्तों को हमारे पूर्वज अच्छी प्रकार जानते थे ? हाय ! हम उन्हीं की सन्तान होकर उनकी विद्या को अन्य देश वालों से ऐसे सीखें कि मानो हमारे पूर्वजों ने इन बातों को स्वप्न में भी न देखा था ! विद्यार्थी तो अलग रहे बहुत से पण्डिताभिमानी ब्राह्मण इन बातों को बिलकुल नहीं जानते। सूर्यसिद्धान्त, आर्यभट्टीय, ब्रह्मसिद्धान्त, सिद्धान्त-शिरोमणि आदि ज्योतिष् के सद्ग्रन्थों के स्थान में मुहूर्त्त-चिन्तामणि, शीघ्रबोध, जातकाभरण, जातकालङ्कार, मानसागरी, ताजक-नीलकंठ आदि अनेक जालग्रन्थ रचकर अनेक स्वार्थी और आलसी मनुष्य दिन धौले लोगों को लूटते फिरते हैं। हमारे देशवासी भी ऐसे भोले हैं कि कुछ नहीं विचारते, इन्हीं जालग्रन्थों के आश्रय आजकल के नाम के ज्योतिषी इन के घरों में वर्त्तन तक नहीं छोड़ते और इन की स्त्रियों के छल्ले अंगूठी तक उतरवा लेते हैं॥ यह सब ग्रन्थ संवत् १६५० विक्रम के आस पास के बने हैं ॥

यथाह :-

९० ५ १

शाके नन्दाभ्रबाणेन्दुमित आश्विनमासके ।
शुक्केऽष्टम्यां वर्षतन्त्रं नीलकंठबुधोऽकरोत् ॥

ताजकनीलकंठे

(अर्थ) शाके १५०९ शालि० अर्थात् सन् १५८७ ई० तदनुसार १६४४ वि० आश्विन सुदि अष्टमी को नीलकण्ठ नामक पण्डित ने यह ग्रन्थ (ताजक नीलकण्ठ) रचा।

अन्यच्च-

५ ३ ५ १

शाके मार्गण राम सायक धरा संख्ये नभस्ये तथा ।
मासे ब्रध्नपुरे सुजातकमिदं चक्रे गणेशः सुधीः ॥

जातकालङ्कारे

(अर्थ) इस ग्रन्थ (जातकालङ्कार) को ब्रध्नपुर निवासी गणेश नामक विद्वान् ने शाके १५३५ अर्थात् सं० १६७० वि० श्रावण मास में रचा ॥

इसी प्रकार मुहूर्तचिन्तामणि के विषय में देखो:-

आसीद्धर्मपुरे षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैर्मण्डिते ।
ज्योतिर्वित्तिलकः फणीन्द्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रमः ॥
तत्तज्जातकसंहिता गणितकृन्मान्यो महाभूभुजां ।
तर्कालंकृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः स चिन्तामणिः ॥१॥
ज्योतिर्विद्गणवन्दिताङ्घ्रिकमलस्तत्सूनुरासीत् कृती ।
नाम्नाऽनन्त इति प्रथामधिगतो भूमण्डलाहस्करः ॥

यो रम्यां जनिपद्धतिं समकरोद्दुष्टाशयध्वंसिनीम् ।
टीकां चोत्तमकामधेनुगणितेऽकार्षीत्सतां प्रीतये ॥ २ ॥

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकण्ठानुजो
गणेशपदपङ्कजं हृदि निधाय रामाभिधः ।
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचन्द्रैर्मिते
शके विनिरमादिमं खलु मुहूर्तचिन्तामणिम् ॥ ३ ॥

मुहूर्तचिन्तामणौ

(अर्थ) धर्मपुर में जो कि छै अंग सहित वेदों के ज्ञाताओं से भूषित था ज्योतिषियों के शिरोमणि, पतञ्जलिकृत महाभाष्य में निपुण, जातक संहिताओं में कुशल बड़े गणितज्ञ, बादशाहों * के भी पूज्य, न्याय अलंकार शास्त्र और वेदवाक्य से भूषित, चिन्तामणिनामक पण्डित थे ॥ १ ॥

उनके अनन्त नामक पुत्र ग्रन्थ रचनेमें कुशल, भूगोलभर में सूर्य के समान थे, जिनके चरण कमलों को सब ज्योतिषी पूजते थे, और जिन्होंने सज्जनों की प्रीति के निमित्त दुष्टाशयनाशिनी सुन्दर जनिपद्धति को रचा और उत्तम कामधेनु गणित में टीका की ॥ २ ॥

---

* इस ग्रन्थ के पीयूषधारा टीकाकार ने "महाभूभुजां" (महाराजाओं के) पद का अर्थ "पातशाहादीनां" (अर्थात् 'पादशाहों के') किया है क्योंकि यह ग्रन्थ १५२२ शाके तदनुसार १६०० ई० में बना है जब इस देश में अकबर बादशाह का राज्य था ॥

उनके पुत्र उदारबुद्धि, अतिविद्वान्, और नीलकण्ठ (जिन्होंने 'ताजक नीलकण्ठ' रचा है) उनके छोटे भ्राता 'रामाचार्य्य' ने गणेश जी के चरणकमल हृदय में धरकर १५२२ शाके अर्थात् सन् १६०० ई० तदनुसार संवत् १६५७ वि० में इस 'मुहूर्तचिन्तामणि' को रचा ॥३॥

पाठक गण ! ये ग्रन्थ केवल ३०० वर्ष के इधर के रचे हुए हैं। प्रत्युत विचार से ऐसा भान होता है कि उसी समय कुछ मनुष्यों ने मिलकर यह जाल फैलाया है क्योंकि पूर्वोक्त तीनों ग्रन्थ केवल १३ तेरह तेरह वर्ष के अन्तर से रचे गये हैं। और मुहूर्तचिन्तामणि के कर्ता तो नीलकण्ठ (ताजक नीलकण्ठ के कर्ता) के भ्राता ही थे।

हमारे पाठकगण इन ग्रन्थकर्त्ताओं की ऐसी प्रशंसा को पढ़कर धोखा न खांय और ऐसी शंका न करें कि ये और इनके पिता पितामहादि बड़े विद्वान् और शास्त्रों के ज्ञाता थे इसलिये इनका लेख कैसे असत्य हो सकता है। 'अपने मुंह मियां मिट्ठू, बनने से क्या होता है'? विद्वान् लोग इनके अयुक्त और परस्पर विरुद्ध लेख देखकर इनके पाण्डित्य को स्वयं परीक्षा करलेंगे। और मुहूर्तचिन्तामणि के कर्त्ता महाशय पर ही क्या, फलित के अन्य ग्रन्थकर्ताओं ने भी अपनी और अपने पिता आदि की ऐसी ही झूंठी प्रशंसा की है। यथाहः-

गोदावरीतीरविराजमानं

पार्थाभिधानं पुटभेदनं यत्।

सद्गोलविद्यामलकीर्तिभाजां

मत्पूर्वजानां वसतेः स्थलं तत् ॥

तत्रत्य दैवज्ञ नृसिंह सूनु-

र्गजाननाराधनताभिमानः ।

श्रीढुण्ढराजो रचयांबभूवे

होरागमेऽनुक्रममादरेण ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) गोदावरी के तीर पार्थ नाम एक नगर विराजमान है, वही मेरे पूर्वजों का निवास स्थान है कि जिस का निर्मल यश सत्य गोल * विद्या के कारण दूर २ छा रहा है । उस नगर के रहने वाले नृसिंह नामक ज्योतिषी के पुत्र गणेश पूजाभिमानी मुझ श्री ढुंढराज जी ने इस ग्रन्थ (जातकाभरण) को रचा ।

अब इनके ग्रन्थ में से कुछ श्लोक दिये जाते हैं जिन से इन की 'गोलविद्या' की पोल अच्छी प्रकार से खुलजायगी अर्थात् यह निश्चय होजायगा कि इन का गोल विद्या का जानना नाममात्र ही के लिये था । वस्तुतः देखिये तो ये ग्रन्थ अयुक्त बातों और गणित की भूलों से पूरित हैं ।

यह सब को विदित है कि इस झूठे ज्योतिष् (अर्थात् फलित) की नींव राशि पर है । जन्म मरण, दुःख सुख, जो कुछ ज्योतिषी जी बतलाते हैं, सब का राशि से ही हिसाब लगाते हैं, इसलिये हम पहिले राशि और राशि फल ही की परीक्षा करते हैं ॥

---

* इस से यह भी सिद्ध है कि खगोलविद्या अर्थात् ज्योतिष् का गणितभाग फलित से बहुत प्राचीन है ॥

राशि वास्तव में क्रान्तिवृत्त के (जिसमें सूर्य भूमि की परिक्रमा करता दिखलाई देता है) १२ कल्पित भाग हैं ।

यथाहः-

अथ कल्प्या मेषाद्या अनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात् । २८

सि० शि० गोलाध्याये

जैसे आकाश में बहुधा मेघों से मनुष्य, पर्वत, गज, अश्व, आदि के आकार बनजाते हैं, ऐसे ही तारों के समूह से भी मेष (मेंढा), वृष (बैल), मीन (मछली) आदि के आकार बन जाते हैं । इन्हीं भपंजरों के आकार पर राशियों के मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ, मीन, नाम रक्खे गये हैं । परन्तु इनका किसी विशेष नामवाले मनुष्यों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है ॥

जन्मपत्र अथवा कुंडली में १२ घर होते हैं और प्रत्येक घर में एक राशि होती है । इन सब राशियों के प्रत्येक घर में पड़ने से भिन्न २ फल लिखे हैं । यद्यपि वे सब ही अद्भुत हैं परन्तु यहां विस्तारभय से केवल सातवें घर ही के लिखेजाते हैं-

मेषेऽस्तसंस्थे च भवेत् कलत्रं

क्रूरं नराणाञ्च फलस्वभावम् । मानसागरी

(अर्थ) जिस मनुष्य के सातवें घर में 'मेष' राशि पड़े उस की स्त्री क्रूर हो ॥

वृषेऽस्तसंस्थे च भवेत् कलत्रं
सुरूपमवाक् प्रणतं प्रशान्तम् । मा० सा०

(अर्थ) सातवें घर में 'वृष' राशि के पड़ने से मनुष्य की पत्नी सुन्दर, कम बोलने वाली, नम्र, और शांत हो।

तृतीयराशौ च भवेत् कलत्रे
कलत्रयुक्तं सुधनं सुवृत्तम् । मा० सा०

(अर्थ) यदि सातवें घर में 'मिथुन' राशि पड़े तो उस मनुष्य की पत्नी धनवती और अच्छे आचरणवाली हो।

कर्कोण युक्ते च मनोहराणि
सौभाग्ययुक्तानि गुणान्वितानि ।
भवन्ति सौम्यानि कलत्रकाणि
कलङ्कहीनानि सुसंयुतानि ॥ मा० सा०

(अर्थ) सातवें घर में 'कर्क' राशि से मनुष्य की स्त्रियें मनोहर, सौभाग्यवती, गुणवती, सुन्दर और कलङ्करहित हों॥

सिंहेऽस्तसंस्थे च भवेत् कलत्रं
तीव्रस्वभावञ्च फलत्र् च दुष्टम्। मा० सा०

(अर्थ) 'सिंह' राशि के सातवें घर में पड़ने से मनुष्य की भार्य्या दुष्ट और तीव्रस्वभाववाली हो।

कन्येस्तसंस्थे च भवेत् सुदाराः
सुरूपदेहास्तनयैर्विहीनाः । मा० सा०

(अर्थ) जिस मनुष्य के सातवें घर में 'कन्या' राशि पड़े उसको पत्नी सुन्दर शरीरवाली और पुत्ररहित हो।

तुलेस्तसंस्थे गुणगर्विताङ्ग्यो
भवन्ति नार्य्यो विविधप्रकाराः। मा० सा०

(अर्थ) 'तुला' राशि के सातवें घर में पड़ने से उस को स्त्रियें गर्वित और विविध प्रकार की हों।

कीटेस्तसंस्थे च विकला समेता
भवेच्च भार्य्या कृपणा नराणाम् । मा० सा०

(अर्थ) 'वृश्चिक, राशि के सातवें घर में पड़ने से मनुष्यों को भार्या विकल और कृपण हो ॥

चापेस्तसंस्थे च भवेत् कलत्रं
नृणां सुदुष्टं विगतस्वभावम् ।
विस्रस्तलज्जं परदोषरक्तं
युद्धप्रियं दम्भसमन्वितञ्च ॥ मा० सा०

(अर्थ) जिस मनुष्य के सातवें घर में 'धन' राशि हो उस को स्त्री अति दुष्ट, स्वभाव से रहित, लज्जाहीन, पराये दोष के छिपाने वाली, लड़ने वाली, और दम्भवाली हो।

घटेस्तसंस्थे च भवेत् कलत्रं
नृणां सुदुष्टं विगतस्वभावम् ।
देवद्विजानां सततप्रहृष्टं
धर्मध्वजं सत्सु क्षमा समेतम् ॥ मा० सा०

(अर्थ) 'कुम्भ' राशि के सातवें घर में पड़ने से मनुष्य की पत्नी अच्छी * दुष्ट, अपने स्वभाव से रहित, देव ब्राह्मण के प्रसन्न रखने वाली, धर्मध्वज, और सज्जनों को क्षमा करने वाली हो ।

मीनेस्तसंस्थे च विकारयुक्तं
भवति कलत्रं कुमतिं कुपुत्रम् । मा० सा०

(अर्थ) सातवें घर में 'मीन' राशि के पड़ने से मनुष्य की स्त्री विकारयुक्त, दुर्बुद्धि और कुपुत्रवाली हो ॥

इन सब श्लोकों का सार यही है कि सातवें घर में कोई राशि पड़े उसका फल उस मनुष्य की स्त्री ही पर पड़ेगा । परन्तु विचार का स्थान है कि बहुत से मनुष्यों का मरण पर्यन्त विवाह ही नहीं होता, और बहुत से बालक विवाह अवस्था से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं । फिर उनके लिये इन राशियों का क्या फल होता है ? और स्त्रियों के सातवें घर में भी अवश्य कोई राशि पड़ती ही है, फिर स्त्रियों की पत्नी कौन होती हैं ? यदि नहीं होतीं तो उन के लिये इन राशियों का फल क्या ?

---

* क्या परस्पर विरोध है ! अच्छी भी हो और दुष्ट भी हो ! अपने स्वभाव से विगत भी हो, और धर्मध्वज भी हो !!!

वाह ग्रन्थकर्त्ता जी! आप को लिखते समय यह भी ध्यान न आया कि दो चार राशि का फल यही लिखदें कि इन के सातवें घर में पड़ने से उस मनुष्य की पत्नी ही न हो, अथवा स्त्रियों के लिये इनका भिन्न ही फल लिखदें! परन्तु आप ही पर क्या स्वार्थी मनुष्यों की बहुधा ऐसी ही मति भङ्ग होजाती है॥

राशि फल भी ऐसी ही अयुक्त और परस्पर विरुद्ध बातों से भर पूर हैं। यहां उदाहरण मात्र के लिये 'मेष' राशिफल के दो श्लोक दिये जाते हैं। विद्वानों का संकेत-मात्र ही बहुत होता है, जिनको विशेष देखना हो जातकाभरण आदि चाहे जिस ग्रन्थ में चाहे जिस राशि का फल देखलें, सब सत्यासत्य खुल जायगा।

धनवान् पुत्रवानुग्रः परोपकरणे रतः।
धर्मकर्मसमायुक्तः सुशीलो राजवल्लभः॥
गुणाभिरामः सततं देवब्राह्मणपूजकः।
कोषशाकल्यभोक्ता च ताम्रविस्रुतलोचनः॥
शूरः शीघ्रप्रसादी च कामी दुर्बलजानुकः॥

(अर्थ) जिस मनुष्य की 'मेष' राशि हो वह धनवान्, पुत्रवान्, उदार, परोपकारी, धर्म कर्म युक्त, सुशील राजप्रिय, सुन्दर गुणवाला, सदा देव ब्राह्मणों का पूजनेवाला, कोष का भोगनेवाला, तांबे के समान भूरी आंखों वाला, शूर वीर, शीघ्र प्रसन्न होने वाला, कामी, और दुर्बलजानु वाला हो।

वाह ! धन्य है आप की बुद्धि को ! 'धर्म कर्म युक्त' भी हो और 'कामी" भी हो, 'शूरवीर' भी हो और 'दुर्बल, भी हो !! फिर विचारने का स्थान है कि करोड़ों मनुष्य मेष राशि वाले होंगे, क्या वे सब धनवान् पुत्रवान् आदि उक्त फलों के भोगी हैं ? परीक्षा कर देखिये लक्षों मनुष्य जिनकी मेष राशि है निर्धन और निःसन्तान मिलेंगे। लाखों धर्म कर्म से रहित होंगे, दूर क्यों जाते हो राशि तो मनुष्यमात्र की होती है, लाखों मेष राशि वाले ईसाई मुसलमान और नास्तिक होंगे । एवं लाखों दुःशील होंगे । फिर यह राशिफल कैसे सत्य हो सकता है ? ऐसे ही वृष आदि अन्य राशियों के फल को भी मिथ्या जानो ॥

फलित वालों ने प्रत्येक राशि के लिये मृत्यु का समय भी निश्चित कर दिया है। यथाह:-

आयुस्तस्य विनिर्देश्यं कार्तिकस्य सितेतरे ।

पक्षे बुधे नवम्यां च निशीथे च शिरोरुजा ॥

निधनं स्यान् निशानाथे जन्मकाले जलस्थिते ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) जिसकी 'मेष' राशि हो उसकी मृत्यु कार्तिक वदि नवमी बुधवार को हो ॥

माघमासे नवम्यां च शुक्लपक्षे भृगोर्दिने ।

रोहिण्यां निधनं विद्याज् जन्मनोन्दौ वृषस्थिते ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'वृष' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु माघ शुदि नवमी शुक्रवार को रोहणी नक्षत्र में हो ॥

वैशाखे शुक्लपक्षे च द्वादश्यां बुधवासरे ।
मध्याह्ने हस्तनक्षत्रे निर्य्याणञ्च विनिर्दिशेत् ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'मिथुन' राशि वाला मनुष्य वैशाख शुदि द्वादशी बुधवार को मध्याह्न समय हस्त नक्षत्र में मृत्यु को प्राप्त हो ॥

माघमासे सिते पक्षे नवम्यां भृगुवासरे ।
रोहिणीनामनक्षत्रे व्रजेदायुः प्रपूर्णताम् ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'कर्क' राशि वाले मनुष्य की आयु माघ शुदि नवमी शुक्रवार को रोहणी नक्षत्र में पूर्ण हो ॥
(☞ 'वृष' राशि वाले मनुष्य के लिये भी यही समय नियत किया है) ।

फाल्गुनस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां सोमवासरे ।
मध्याह्ने जलमध्ये च मृत्युर्नूनं न संशयः ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'सिंह' राशिवाले मनुष्य की मृत्यु फाल्गुण शुदि ५ पंचमी सोमवार को मध्याह्न समय जल के बीच में हो, इस में कुछ सन्देह नहीं है ॥

चैत्रे कृष्णात्रयोदश्यां निधनं रविवासरे ।

जातकाभरणे

(अर्थ) 'कन्या' राशिवाले मनुष्य की मृत्यु चैत्र वदि त्रयोदशी रविवार को हो ॥

पञ्चाशीतिर्भवेदायुर्वैशाखस्याद्यपक्षके ।
सार्प्येऽष्टम्यां भृगुवारे निधनं पूर्वयामके ॥

जातकाभरण

(अर्थ) 'तुला' राशि वाला मनुष्य ८५ वर्ष की आयु में वैशाख वदि ८ अष्टमी शुक्रवार को अश्लेषा नक्षत्र में मरण को प्राप्त हो ॥

जिस मास की पूर्णमासी को जो नक्षत्र होता है उसी के नाम से वह मास पुकारा जाता है, जैसे चित्रा नक्षत्र से चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ पूर्वाषाढ़ से आषाढ़, श्रवण से श्रावण, पूर्वाभाद्रपदी से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्त्तिक, मृगशिरा से मार्गशिर, पुष्य से पौष, मघा से माघ और पूर्वाफाल्गुणी से फाल्गुण पुकारा जाता है। इसके अनुकूल चैत्र की पूर्णिमा* को चित्रा नक्षत्र होता है और वैशाख वदि ८ को श्रवण नक्षत्र होता है। परन्तु अश्लेषा नक्षत्र चित्रा से २२ वां है इसलिये पूर्णिमा से २२ दिन पश्चात् अर्थात् वैशाख सुदि ७ को होगा, कृष्ण पक्ष की अष्टमी को किसी प्रकार नहीं होसकता।

ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां बुधवासरे ।
हस्तनक्षत्रसंयुक्ते मध्ये रात्रिगते सति ॥

जातकाभरण

* बहुधा एक, दो, वा तीन दिन का अन्तर भी पड़जाता है परन्तु तीन दिन से अधिक अन्तर पड़ना असम्भव है ॥

(अर्थ) 'वृश्चिक' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु ज्येष्ठ शुदि दशमी बुधवार को हस्त नक्षत्र में मध्य रात्रि पर हो ॥

आषाढ़स्य सिते पक्षे पञ्चम्यां भृगुवासरे ॥
निशायां हस्तनक्षत्रे निधनं सर्वथा भवेत् ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'धन' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु आषाढ़ शुदि पञ्चमी शुक्रवार को हस्त नक्षत्र में हो ॥

श्रावणस्य सिते पक्षे दशम्यां भौमवासरे ।
ज्येष्ठायां निधनन्नूनं चन्द्रे मकरसंस्थिते ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'मकर' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु अवश्य श्रावण शुदि दशमी मङ्गलवार को ज्येष्ठा नक्षत्र में हो ॥

भाद्रमासे सिते पक्षे चतुर्थ्यां शनिवासरे ।
भरणीनामनक्षत्रे ग्रणन्ति मरणं नृणाम् ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'कुम्भ' राशि वाले की मृत्यु भाद्रपद सुदि चतुर्थी शनिवार को भरणी नक्षत्र में हो ॥

यहां भी जातकाभरणकर्त्ता ने गणित में भूल की है क्योंकि भरणी नक्षत्र श्रवण नक्षत्र से सातवां है इसलिये श्रावण की पूर्णमासी से ७ दिन पश्चात् अर्थात् भाद्रपद कृष्णा ७ सप्तमी को आवेगा, शुक्ल पक्ष की ४ को कदापि नहीं आसकता ॥

आश्विनस्य सिते पक्षे द्वितीयायां गुरोर्दिने ।
कृत्तिकानां नक्षत्रे सायं मृत्युर्न संशयः ॥

जातकाभरणे

(अर्थ) 'मीन' राशि वाले की मृत्यु आश्विन शुदि २ बृहस्पतिवार को सायंकाल कृत्तिका नक्षत्र में हो, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥

यहां भी गणित में भूल है, क्योंकि कृत्तिका नक्षत्र पूर्वा-भाद्रपद से पांचवां है इसलिये आश्विन वदि पंचमी को आना चाहिये, आश्विन शुदि २ को किसी प्रकार से नहीं आसकता ॥

गणित की भूलों को छोड़कर (जिनसे ग्रन्थकर्त्ता की गणितज्ञता अच्छी प्रकार झलकती है,) इस ग्रन्थ के अनु-कूल सब मनुष्यों को उक्त ११ * दिन में मरना चाहिये वर्ष भर के शेष ३४९ दिन में किसी की भी मृत्यु न होनी चा-हिये, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की कोई राशि अवश्य होती है। परन्तु संसार भर के मनुष्यों की गणना तो दूर रही, एक नगर ही की परीक्षा से इस बात का मिथ्यात्व प्रकट होजा-यगा, अर्थात् परीक्षा से ज्ञात होगा कि कोई दिवस ऐसा न होगा कि कुछ मनुष्यों की मृत्यु न हुई हो । परीक्षा से यह भी खुल जायगा कि एक राशि के सब मनुष्यों की मृत्यु एक ही (नियत) दिन नहीं होती ॥

* 'वृष' और 'कर्क' राशि के लिये एक ही दिन (अर्थात् माघ सुदि ९) नियत किया है इसलिये १२ राशि के लिये ११ दिन हुए ॥

केवल इतना ही नहीं किन्तु इस विषय में फलित के ग्रन्थों में बड़ा परस्पर विरोध है। जातकाभरण के विरुद्ध मानसागरी पद्धति में निम्न लेखानुसार दिन निश्चित किये हैं। साथ ही मानसागरी के कर्त्ता महाशय की गणितज्ञता और पाण्डित्य का भी कुछ परिचय दिया जाता है।

(मेष) कार्तिकमासे तिथि चौथ वार मङ्गल भरणी नक्षत्रे देहं त्यजति ॥ * मानसागरी

वाह ग्रन्थकर्त्ता जी! आपका पाण्डित्य धन्य है !! कहिये तो यह कौन भाषा है? संस्कृत, प्राकृत अथवा कोई अन्य?

यह ग्रन्थ व्याकरण की अशुद्धताओं से सर्वत्र भरपूर है, अतएव इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, पाठकगण स्वयं देख सकते हैं। गणित की भूलों से भी यह ग्रन्थ ऐसे ही आच्छादित है। पूर्वोक्त गणित में ग्रन्थकर्त्ता ने यह युक्ति की है कि पक्ष नहीं बतलाया, परन्तु भरणी नक्षत्र कृत्तिका से १ पूर्व है इसलिये कार्तिक की पूर्णमासी से एक दिन पूर्व अर्थात् कार्तिकशुदि १४ को आवेगा, किसी पक्ष की चतुर्थी को नहीं आसकता॥

(वृष) माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ ६ शुक्र दिने रोहणी नक्षत्रे अर्द्धरात्रौ देहं त्यजति।

(अर्थ) 'वृष' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु, माघ शुदि नवमी शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र में अर्द्ध रात्रि समय हो।

---

* (अर्थ) 'मेष' राशि वाला मनुष्य कार्तिक की चतुर्थी मङ्गलवार को भरणी नक्षत्र में शरीर त्यागता है॥

(मिथुन) पौषमासे कृष्णपक्षे अष्टमी दिने बुधवारे आर्द्रानक्षत्रे प्रथमप्रहरे देहं त्यजति ॥

(अर्थ०) 'मिथुन' राशि वाले मनुष्यों की मृत्यु पौष वदि अष्टमी बुधवार को आर्द्रा नक्षत्र में प्रथम प्रहर में हो।

यहां भी गणित में भूल है क्योंकि आर्द्रा नक्षत्र मृगशिरा से १ आगे है इसलिये पौष वदि १ को आवेगा ।।

(कर्क) फाल्गुणमासे शुक्लपक्षे ४ प्रहरे गोधूलिकवेलायां देहं त्यजति ॥

(अर्थ०) 'कर्क' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु फाल्गुण शुदि ४ गोधूलिक वेला में हो ॥

(सिंह) श्रावणमासे शुक्लपक्षे दशमी दिने पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रे रविवारे १ प्रहरे देहं त्यजति ॥

(अर्थ०) 'सिंह' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु श्रावण सुदि १० रविवार को प्रथम प्रहर में पूर्वा फाल्गुणी नक्षत्र में हो

यहां भी गणित में भूल है क्योंकि पूर्वा फाल्गुणी नक्षत्र श्रवण से ११ नक्षत्र पूर्व है इसलिये श्रावण शुदि ४ को आयेगा ॥

(कन्या) भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे नवमी दिने बुधवारे हस्तनक्षत्रे गोधूलिकवेलायां देहं त्यजति ।

(अर्थ) 'कन्या' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु भाद्रपद शुदि ९ बुधवार को गोधूलिक वेला में हस्त नक्षत्र में हो।

यहां भी भूल है क्योंकि हस्त नक्षत्र श्रवण से अठारहवां है इसलिये भाद्रपद शुदि ३ को आयेगा ॥

(तुला) वैशाखमासे शुक्लपक्षे १३ शुक्रवारे शतभिषानक्षत्रे मध्याह्ने वेलायां देहं त्यजति ॥

(अर्थ) 'तुला' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु वैशाख शुदि १३ शुक्रवार को मध्याह्नसमय शतभिषा नक्षत्र में हो।

यहां भी गणित में भूल है क्योंकि शतभिषा नक्षत्र विशाखा से १८ नक्षत्र पूर्व है इसलिये वैशाख की पूर्णमासीसे १८ दिन पूर्व अर्थात् वैशाख वदि ११ को आयेगा ॥

(वृश्चिक) ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे तिथौ ११ मङ्गलवारे अनुराधानक्षत्रे १ प्रहरे देहं त्यजति ॥

(अर्थ) 'वृश्चिक' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु ज्येष्ठ वदि ११ मङ्गलवार को अनुराधा नक्षत्र में हो ।

अनुराधा नक्षत्र विशाखा से १ पश्चात् है इसलिये ज्येष्ठ वदि १ को आयेगा ।

(धन) आषाढ़मासे शुक्लपक्षे तिथि १ गुरुवारे हस्तनक्षत्रे गोधूलिकवेलायां देहं त्यजति ॥

(अर्थ) 'धन' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु आषाढ़ शुदि १ बृहस्पतिवार को हस्त नक्षत्र में हो ।

हस्त नक्षत्र पूर्वाषाढ़ से ७ नक्षत्र पूर्व है इसलिये आषाढ़ शुदि ८ को आयेगा, १ कदापि नहीं आसकता ।

(मकर) कार्तिकमासे शुक्लपक्षे तिथि ५ शुक्र-

वारे श्रवणनक्षत्रे देहं त्यजति ।

(अर्थ) —'मकर' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु कार्त्तिक शुदि ५ शुक्रवार को श्रवण नक्षत्र में हो ।

(कुम्भ) माघमासे शुक्लपक्षे तिथि २ गुरुवारे उत्तराभाद्रपदनक्षत्रे मृत्युर्भवति ॥

(अर्थ) —'कुम्भ' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु माघ सुदि २ गुरुवार को उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हो ।

(मीन) माघमासे शुक्लपक्षे तिथि १२ उत्तरा भाद्रपदनक्षत्रे गुरुवारे प्रातःकाले देहं त्यजति ॥

अर्थ – 'मीन' राशि वाले मनुष्य की मृत्यु माघ सुदि १२ गुरुवार को उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में हो ।

यहां गणित में प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि (कुम्भ और मीन राशि में) माघ सुदि २, तथा माघ सुदि १२ के लिये एक ही (उत्तराभाद्रपद) नक्षत्र है । परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। यह इन ज्योतिषियों के पांडित्य और गणितज्ञता का कुछ परिचय है । इस परस्पर विरोध में भी इन लोगों की यह युक्ति है कि यदि कोई मनुष्य इन दोनों दिनों में से (जो 'मानसागरी' और 'जातकाभरण' में एक ही राशि के लिये नियत किये गये हैं,) किसी दिन मरजाय तो वैसाही प्रमाण सुना दें। जब राशिफल ही की यह दशा है तो "प्रथमग्रासे मक्षिकाभक्षणम्" यही कहावत चरितार्थ होती है । फिर यह बेनींव का घर, यह बालू की भीत

कब तक ठहर सकती है ? अर्थात् इस झूठे ज्योतिष को (जिसमें केवल अविद्या छल और कपट ही भरे हैं) विद्वान् और सभ्य लोग कैसे मान सकते हैं ? इनकी ऐसी चालाकी बहुत सी हैं । जैसे -कोई इनसे प्रश्न करे कि' महाराज आज मेरा विचार विदेश जाने का है, "चला जाऊं' कुछ डर तो नहीं" ? तब विचारने लगते हैं कि इनके मुहूर्त्त में कुछ अवगुण देखना चाहिये, जिससे शांति के निमित्त कुछ दान मिले । विचार के कहते है कि "और तो सब योग अच्छे हैं परन्तु बाँई योगिनी है इसलिये कुछ दान करादो" । यदि इनसे कोई कहे कि महाराज बांई योगिनी तो ज्योतिषी अच्छी बतलाया करते हैं तो कहते कि "प्रमाण सुनलो"-

पृष्ठतो दक्षिणे वापि योगिनी गमने हिता ।
वामसम्मुखयोर्नेष्टा वायुमेवं विचिन्तयेत् ॥

विजयकल्पलतावाक्यम्

(अर्थ) यात्रा के लिये दांए और पीछे योगिनी हितकारक होती है, और वाम और सन्मुख अच्छी नहीं होती ।

इस प्रकार बहकाकर झट दान करवा लेते हैं और कभी ये आप बांई योगिनी में यात्रा करते हैं,तो यदि इनसे कोई कहे कि "आप बांई योगिनी का विचार क्यों नहीं करते" ? तब निम्नलिखित प्रमाण सुना देते हैं —

योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वाञ्छितदायिनी ।
दक्षिणे धनहंत्री च सम्मुखे मरणप्रदा ॥

शीघ्रबोधे

(अर्थ)योगिनी बांए सुख के देने वाली पीछे वाञ्छित फल के देने वाली, दांए धन का नाश करने वाली, और

सम्मुख मृत्यु के देने वाली होती है।

ऐसीही शुक्र के विषय में इन लोगों की चालाकी देखिये:—

दैत्ये ज्योह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद् गच्छेयुर्नहि शिशुगर्भिणी नवोढ़ा। बालश्चेद् व्रजति विपद्यते नवोढ़ा चेद् बन्ध्या भवति सगर्भिणी त्वगर्भा॥

मुहूर्त्तचिन्तामणिर्द्विरागमनप्रकरणे।

अर्थ—यदि शुक्र सन्मुख वा दांए हो तो बालक गर्भवती, और नव विवाहिता स्त्रियों को जाना वर्जित है। यदि बालक जायगा तो विपत्ति को प्राप्त होगा, नव विवाहिता स्त्री बन्ध्या हो जायगी, और गर्भवती स्त्री का गर्भ गिरजायगा। इत्यादि वचनों से बहकाकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

(प्रश्न) बहकाना तो आप जब कह सकते थे कि और सब जाति की स्त्रियों के लिये तो शुक्र सन्मुख का दोष बतलाते, और अपने कुल की स्त्रियों के लिये दोष न बताते, जब यह सबही स्त्रियों के वास्ते है तो बहकाना कहां रहा?

(उत्तर) जी! यही तो झगड़ा है, कि जिस जिस कुल के ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं उन्हों ने एकता करके ऐसे श्लोक बनादिये हैं कि उनके गोत्र वालों को दोष ही न लगे। सुनिये—

कश्यपेषु वशिष्ठेषु चात्रिभृग्वंगिरःसु च।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रति शुक्रो न दुष्यति॥ पीयूषधारायाम्

(अर्थ) कश्यप, वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, भारद्वाज, और वात्स्य इन गोत्र वालों को शुक्र का दोष नहीं लगता।

विचारने का स्थल है कि शुक्र पृथिवी के सदृश एक ग्रह है जिस का इस भूगोलवालों से कुछ सम्बन्ध नहीं, और न वह (जड़ होने के कारण) हम को दुःख वा सुख देसकता है। और यदि मान भी लिया जाय जो शुक्र हम को दुःख सुख देने में समर्थ है, तो क्या कश्यप, वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, भारद्वाज और वात्स्य के कुलवालों से उसकी मित्रता है? क्या वह और सब का शत्रु है? अथवा वह पूर्वोक्तगोत्र वालोंका सगोत्र है? जो उनको उसका दोष नहीं लगता। इस से इन ग्रन्थकर्त्ताओं का स्पष्ट यह आशय प्रतीत होता है, कि हमारे वंश वाले (ज्योतिषी) अन्य लोगों को शुक्र आदि का दोष बतलाकर शान्ति के निमित्त जप पूजा पाठ करायें और अच्छे प्रकार से ठगें, तथा हमारे सगोत्रों को इस (शुक्र के दोष) के कारण कुछ दुःख न उठाना पड़े। भला इस से अधिक छल वा स्वार्थता क्या होगी! तभी तो इन लोगों ने मद्य पीने के मुहूर्त्त, चारवाक आदि मतावलम्बिनी 'पाखण्डमण्डली' करने के मुहूर्त्त, यहां तक कि चोरी करने के भी मुहूर्त्त बनादिये। यथाहि-

तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितम् ॥

मुहूर्त्तचिन्तामणिर्नक्षत्रप्रकरणे श्लोक ११

अत्र पीयूषधारा टीका—

रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूत्ये
याम्ये सार्प्ये नैर्ऋते चैव धिष्ण्ये।
पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो

मद्यारम्भः कालविद्भिः पुराणैः ॥

(अर्थ) आर्द्रा, मघा, शतभिषा, ज्येष्ठा, भरणी, आश्लेषा, मूल, पूर्वषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, नक्षत्रों में मद्यपान श्रेष्ठ कहा है। तथाच-

उषाश्विनी मृगे स्वातौ पुनर्भे श्रवणात्रये
जया पूर्णा सुशुक्रेब्जे बुधेऽह्नि चरोदये।
चार्वाकजिनपाषण्डमण्डलीकरणं शुभम् ॥

मुहूर्त्तगणे

(अर्थ) उत्तराषाढ़, अश्विनी, मृगशिरा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनेष्ठा, शतभिषा नक्षत्रों में-तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा और अमावास्या तिथियों में-और शुक्र, चन्द्र, बुधवारों में और चर लग्न के उदय में चारवाक जैनमतावलम्बिनी पाषण्डमण्डली करनी शुभ हो।

अन्यच्च-

विशाखा कृत्तिका पूर्वा मूलार्द्रा भरणीमघे।
आश्लेषाज्येष्ठयोर्भेषु भौमे वा शाकुने बले ॥
लग्ने वा दशमे भौमश्चौरस्य द्रव्यलब्धयः।

मुहूर्त्तगणे।

(अर्थ) विशाखा, कृत्तिका, पूर्वषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, मूल, आर्द्रा, भरणी, मघा, आश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रों में-जब मंगल वा शनिश्चर का बल हो-तथा जब लग्न वा दशवें स्थान में मंगल हो-ऐसे मुहूर्त्त में चोरी करने से बहुत धन प्राप्त हो।

इन से इन दुराचारप्रवर्त्तकाचार्य्यों का यही आशय प्रतीत होता है, कि कोई मनुष्य किसी प्रकार का कुकर्म्म भी करना चाहे तो ज्योतिषी जी से मुहूर्त्त पूंछकर और उन को भेट देकर कर सकता है। इनसे अधिक देश का शत्रु कौन होगा जो लोभ और स्वार्थ के वश कुकर्म्म और दुराचार की शिक्षा करते हैं? हाय री स्वार्थता! तूने एतद्देशवासियों को अन्धा बनाया! इस देश को सत्यानाश में मिलाया!! गिराते गिराते पाताल तक दिखाया!!! क्या अब भी कुछ शेष है?

हाय भारतवर्ष! तेरी सन्तान जो एक समय परोपकार के लिये प्राण तक अर्पण करदेती थी — आजकल अविद्या के वश होकर स्वार्थसाधन के निमित्त अपने ही बांधवों का गला काटती है! क्या यह अविद्या देवी का प्रसाद नहीं है कि जिस ज्योतिष् शास्त्र से ग्रहों की गति, परिमाण, इत्यादि परमेश्वर की अनन्तसृष्टि की महिमा का ज्ञान होता है, उस के स्थान में स्वार्थी मनुष्य स्वयं "ग्रहरूप" बन राहु, केतु की दशा बताकर लोगों को ठगते फिरते हैं? परन्तु ऐसे बहुत कम हैं कि जो ज्योतिष्शास्त्र के सत् सिद्धान्तों को पढ़कर उन का प्रचार करना चाहते हैं। जब यहां के "पण्डितों" और "ज्योतिर्विदों" की यह दशा है, तो बेचारे विद्यार्थी जो अङ्गरेजी स्कूलों और कालेजों में उन्हीं बातों को पढ़कर यह जान लेते हैं कि ये बातें यौरपनिवासियों ही ने निश्चय की हैं — यदि स्वदेशभक्तिहीन हो जांय, तो इस में उन का क्या दोष है?

इसलिये हे भारतवासियो! यदि तुम अपनी सन्तान के सच्चे हितकारक और अपने देश के पक्के भक्त हो, तो

संस्कृतविद्या की उन्नति में तन मन धन से कटिबद्ध हो जाओ जिस से तुम्हारी सन्तान की स्वदेशविद्या और सद्धर्म में भक्ति रहे, और तुम्हारे देश का शीघ्र ही पुनरुद्धार हो।

हे धर्मसुशिक्षक, विद्यार्कप्रकाशक परमात्मन्! एतद्देशियों को शीघ्र ऐसी बुद्धि दे कि वे इस शुद्ध संस्कृतविद्या के प्रचार में सदैव तत्पर रहें॥

ओश्म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इति

ओ३म्

समाचारपत्रों की समालोचना ॥

—:o:—

"सद्धर्मप्रचारक" जालन्धर ॥

जिल्द १ नं० ३१ । कार्तिक सुदि ११ सं० १९४६ वि० ९ नवंबर सन् १८८९ ई०

—:o:—

ज्योतिश्चन्द्रिका—यह एक अमूल्य देवनागरी भाषा का नुस्ख़ा (पुस्तक) ज्योतिष विद्या की ख़ूबियों को दर्शाने और ग्रहों के फलादेशरूपी जाल का पोल ज़ाहिर करने में अपना जवाब नहीं रखता । इस के मुसन्निफ़ (ग्रन्थकर्त्ता) एक हमारे देश के होनहार नौजवान बाबू गङ्गाप्रसाद आगरा कालिज के विद्यार्थी हैं । इबारत निहायतसलीस (सरल) और बा महावरः साथ ही इसके ज़बांदानी की ख़ूबियों से पुर (भरी हुई) । छपाई भी औसत दरजे की अच्छी है ॥

हमने इस पुस्तक को बड़े ग़ौर से पढ़ा है । इस के मुताले ने हमें इस नतीजे पर पहुंचाया है कि अगर बाबू गङ्गाप्रसाद जी की तरह हमारे दीगर (अन्य) आर्य्य भाई भी देवनागरी भाषा की पुस्तकें तस्नीफ़ (निर्माण) करना शुरू करदेवें तो बहुत जल्द वह दिक़्क़त जो हमें दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालिज के कुतबदर्सिये (पढ़ाई की पुस्तकों) के इन्तख़ाब (छांट) के वक़्त होती है, रफ़ै होजावे ॥

हम इस छोटीसी पुस्तक को ऐसा उमदा ज़रिया (उत्तम उपाय) अपने स्वदेशी भाइयों की जहालत (अविद्या) दूर करने का समझते हैं, कि अगर गुंजायश होती तो अकसर जगह से मज़मून के मज़मून बतौर नमूने हदिये नाज़रीन (पाठकों के अर्पण) करते। ताहम (तौ भी) हम कुछ थोड़ासा आशय इस पुस्तक का अपने नाज़रीन (पाठकों) पर ज़ाहिर करना मुनासिब समझते हैं॥

यह नुस्ख़ा बे नज़ीर (अनुपम पुस्तक) एक दीबायचे (उपक्रम) से शुरू किया गया है जिसमें ईश्वरोपासना के बाद अपने मुल्क की मौजूदा (वर्त्तमान) हालत का नकशा खींच, उस पर अफ़सोस कर प्राचीन समय से उस का मुकाबला करके ग्रन्थ की ज़रूरत ज़ाहिर की गई है। इस के बाद मज़ामीन ज़ैल (निम्न लिखित विषयों) को ठीक ठीक प्राचीन ज्योतिषविद्या के अनुसार ज़ाहिर करके दिखलाया गया है कि यौरप देशनिवासी इस बात का फ़ख़्र (अभिमान) नहीं कर सकते कि उन्होंने हमें विद्या सिखाई है—ज़मीन का गोल होना, ज़मीन का आधार, पातालनिवासी, ज़मीन का कुतर (व्यास) वग़ैरह, ज़मीन वग़ैरह (पृथिवी आदि) कुरों (गोलों) का घूमना, वग़ैरह वग़ैरह (इत्यादि)। साथ ही साथ पौराणिक ख़यालात का खण्डन सद्ग्रन्थों के प्रमाण से किया गया है॥

आख़िर में फलादेश के ग्रन्थों का इख़्तलाफ़ बाहमी (परस्पर विरोध) और नीज़ बईद अज़ अक़्ल व तजरुबे (बुद्धि और अनुभव के विरुद्ध) होना साबित करके अपने

देशहितैषियों से संस्कृतविद्या के प्रचार के लिये एक ज़ोरदार अपील की गई है। हमारी राय में यह किताब दयानन्द एङ्गलो वैदिकस्कूल में ख़ुसूसन (विशेष कर,) और दीगर मदारिस (अन्यपाठशालाओं) में अमूमन पढ़ाए जाने के लायक़ है।

क़ीमत फ़ी जिल्द ≤) लाला रामचन्द्र वैश्य लाला का बाज़ार मेरठ शहर से मिल सकती है॥

—:0:—

(२) "आर्य्यसिद्धान्त," प्रयाग.

भाग २ अङ्क ४। दिसंबर सन् १८८९ ई॰

(ज्योतिश्चन्द्रिका) यह पुस्तक गङ्गाप्रसाद जी विद्यार्थी आगरा कालिज मेरठ निवासी ने बनाया है। इस में ज्योतिष् का सिद्धान्त अच्छे प्रकार लिखा है। जिस से स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि पृथिवी गोल है, उस का आधार, आकर्षण, भ्रमण, उस की परिधि और व्यास का मान आदि जैसा इङ्गलैण्ड निवासी सिद्ध करते हैं, वह इन २ सिद्धान्त शिरोमणि आदि प्रामाणिक आर्ष ग्रन्थों के अनुसार हम आर्य्यों की वेदमूलक सनातन विद्या है। और द्वितीय आजकल पौराणिक लोग जिस फलित को ज्योतिष् मानते हैं उस में निर्बलता और विरोध स्पष्ट दिखा दिया है। इत्यादि कारणों से यह पुस्तक अति उत्तम देखने योग्य है।

—:0:—

The Arya Patrika, Lahore, 31st Dec. 1889.

JYOTISHCHANDRIKA.

It is certainly a most valuable compilation from the Aryan Shastras from the Revelation and Works of learned and wise Aryans. Its compiler is Lala Ganga Prasad B. A. Class Agra College. We Can not do better than subjoin here a translation of the author's preface to the book wherein he briefly sets forth reasons which led him to compile it. He says :–The chief object aimed at in the compilation of this book (this object will be more clear on reading the Introductry remarks) is to firstly demonstrate to the people of this country that such common physical and astronomical truths as that "The earth is round" that "It spins round the sun" and so forth, have been known in this country for thousands and thousands of years. The Indian youths of the present day who are educated in English Schools and Colleges are generally found labouring under the impression that these truths have been brought to light only by European Scientists, but this is mistake. The second object which the book is intended to serve is to show the hollowness and absurdity of the pretensions of the astrologers, who, by deluding the ignorant and credulous into the belief that "Rahu" "Ketu" and other heavenly bodies have a power to make or mar their destinies, make them the victims of their rapacity and plunder. The pretensions of the astrologer find absolutely no support in true "Jyotish-Shastra." For our own part, the perusal of the book has given us the highest pleasure. It is divided into many chapters. The writer, as hinted above, quotes largely from the Vedas, "Surya Sidhant," "Sidhant Shiromani" and other authoritative works in support of his position in each chapter. The book deserves to be extensively read.

"आर्य्यपत्रिका" लाहौर, ३१ दिसंबर १८८९ ई०

"ज्योतिश्चन्द्रिका"

निश्चय यह एक बहुमूल्य पुस्तक है। यह केवल आर्य्य शास्त्रों, वेदों और आप्त पुरुषों के ग्रन्थों ही से रची गई है. इसके रचनेवाले लाला गङ्गाप्रसादविद्यार्थी बी॰ ए॰ क्लास आगरा कालेज हैं। हमारी सम्मति में यही सब से उत्तम है कि हम पुस्तक की भूमिका (जिस में ग्रन्थकर्त्ता ने संक्षेप से वह कारण. जिन्हों ने उन को पुस्तक रचने पर उद्यत किया दिखाये हैं) का अनुवाद नीचे लिखदें। वह कहते हैं कि:—(देखो भूमिका)

हमें इस पुस्तक के अवलोकन से महान् हर्ष हुआ। यह पुस्तक बहुत से भागों में विभक्त है। ग्रन्थकर्त्ताने जैसा पहिले संकेत किया गया है हरएक भाग में अपने पक्ष की पुष्टि में वेद, सूर्य्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि और अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों से अनेक प्रमाण दिये हैं। यह पुस्तक अच्छे प्रकार प्रचार होने योग्य है॥

ओ३म्

शुद्धाशुद्धपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
भोगे	भोगें	३	८
सर्वशक्तिमान् !	सर्वशक्तिमन् !	३	१२
खानि	खान	४	१६
एदद्दे०	एतद्दे०	८	१३
कतं	कृतं	८	२१
समान	०	१२	२
भूमौ	भूमि	१७	२०
भाष्यं)	भाष्यम्)	२१	१६
पर	पैर	२४	११
चपठी	चपटी	२८	१०
विधो:	विधो:	३०	१८
नाड़िका	नाडिका	३०	२१
आर्यभट्ट	आर्यभट्टः	४४	३
ध्वसिनीम्	ध्वंसिनीम्	५४	१
रचयांबभूवे	रचयाम्बभूवे	५६	४
कुमतिं	कुमति	५८	७
कोषग्राकल्य०	कोषसाकल्य०	६१	१६
फाल्गुणी	फल्गुनी	६८	१४

सूचीपत्र ॥

	पृष्ठ
भूमिका	१
उपक्रम	३
गणित	८
पृथिवी का गोल होना	८
पृथिवीका आधार	१७
पातालनिवासी	२२
पृथिवी को परिधि और व्यास	२५
अक्षांश और देशान्तर	२७
पृथिव्यादि लोकोंका घूमना	३३
चन्द्र और सूर्य्य ग्रहण	४५
फलितसमीक्षा	५२
फलितके ग्रन्थोंका नवीनहोना	५२
राशिफलपरीक्षा	५६
गणित की भूल	६४
योगिनी आदिका विचार	७१
उपसंहार	७५
समालोचना	७७
शुद्धाशुद्ध पत्र	८२

"सत्यसिन्धु"

अर्थात्

सत्य वार्त्ताओं का समुद्र ॥

यह पुस्तक श्रीयुत पण्डित तुलसीराम जी मिश्र भूत-पूर्व उपदेशक आर्य्यसमाज लखनऊ ने आर्य्य बन्धुओं के हितार्थ वेद, मनुस्मृति, उपनिषद्, शास्त्र, और अनेक सद्ग्रन्थों के प्रमाणों से असत्य के खण्डन और सत्य के मण्डन में रचा है। कविता और पद्यरचना अत्यन्त ललित और सुन्दर है ॥

———00———

एक विधवा की प्रार्थना

यह उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि देहलीनिवासी जनाब मौलवी अलताफ़ हुसेन हालीकृत "एक बेवा की मुनाजात" का देवनागरी अक्षरों में उलथा है, जिस में कवि ने वे सङ्कल्प विकल्प जो इस देश की दीन विधवाओं के हृदय में नित्य उठते हैं, भली प्रकार दर्शाये हैं और इन हीन दीन अबलाओं के दुखड़ों का चित्र अच्छी प्रकार खींचा है। इस को मेरी पत्नी ने विधवा स्त्रियों की दशाप्रकाशनार्थ, आर्यभाषा जानने-वाले महाशयों के लिये देवनागरी अक्षरों में छपवा कर प्रकाशित की है। छापा टाइप, अक्षर शुद्ध, कागज़ पुष्ट, मूल्य =) मात्र, स्त्रियों के लिये (जो अपने हाथ से पत्र लिखें) ।)॥, बीस वा बीस से अधिक मोल लेने वाले महाशयों को २०) सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

उपरोक्त दोनों पुस्तकों का पता:—रामचन्द्र वैश्य

आर्यपुस्तकालय

लाला का बाज़ार

मेरठ शहर